वार्षिक रु. ६० मूल्य रु. ८.००
विवेक-ज्योति
वर्ष ५२ अंक १० अक्तूबर २०१४
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अक्तूबर २०१४

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५२
अंक १०

वार्षिक ६०/– **एक प्रति ८/–**

५ वर्षों के लिये – रु. २७५/–
आजीवन (२५ वर्षों के लिए) – रु. १,२००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएं

विदेशों में – वार्षिक ३० डॉलर; आजीवन ३७५ डॉलर (हवाई डाक से) २०० डॉलर (समुद्री डाक से)

संस्थाओं के लिये –
वार्षिक ९०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ४००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५

आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखको ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है । विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है । आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सर्वप्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें । विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है । २.रचना बहुत लम्बी न हो । पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय । पाण्डुलिपि फूलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुयी हो । आप अपनी रचना ई-मेल vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं। ३. लेख में आये उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें । ४. आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें । अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें ५. पत्रिका हेतु कवितायें छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें । ६.'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा । ७.'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें । यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें ।

सम्पादक महोदय से मुझे भी कुछ कहना है

परम श्रद्धेय सम्पादक महाराज...भविष्य में यदि सम्भव हो, तो 'विवेक ज्योति' के मुखपृष्ठ पर स्वामीजी के साथ ही बेलूड़ मठ का फोटो भी प्रकाशित करने की कृपा करें, जिससे सदस्यगण मिशन के मुख्यालय के चित्र का दर्शन कर सकें। –**सुरेश कुमार श्रीवास्तव, एडवोकेट, झाँसी**

– सम्माननीय श्रीवास्तवजी, हमेशा ही आपके सूझाव व्यावहारिक और लोकहितार्थ रहते हैं । अक्तूबर 'विवेक-ज्योति' के अन्दर के रंगीन पृष्ठों पर बेलूड़ मठ और प्रमुख स्थानों का चित्र छाप रहे हैं और भविष्य में मुखपृष्ठ पर भी छापने का प्रयास करेंगे ।-सं

सम्पादकजी,...आपको पहले भी पत्र लिखा था, वर्ष में कम-से-कम एक विशेषांक अवश्य निकालें । समय अब तेजी से बदल रहा है, आपको पत्रिका की सामग्री, प्रिंटिंग को बदलना चाहिये । अधिकतर पत्रिकाओं का वर्ष के प्रारम्भ में विशेषांक आता है । आप पत्रिका की कीमत बढ़ाकर यह कार्य करें । **विजय कुमार कपूर, अलीगढ़ (उ.प्र.)**

– सम्माननीय कपूरजी, आपके सुझाव प्राप्त हुए। मानव-जीवन के विकास के लिये यह आवश्यक है कि वह युगानुरूप अपने में आवश्यक परिवर्तन लाये । इससे कोई भी विकसित विधा वंचित नहीं है । 'विवेक-ज्योति' पत्रिका भी अपने ५२ वर्षों की यात्रा में बहुत कुछ देख चुकी है । अब इसमें भी परिवर्तन बड़ी द्रुत गति से किया जा रहा है । सबसे पहले हमने अपना ध्यान लेखों की सामग्री पर दिया । अब हम इसके प्रारूप, कागज और प्रिंटिंग पर ध्यान दे रहे हैं । पिछले महीने से तो रंगीन कुछ पृष्ठ भी प्रारम्भ किये गये हैं । भविष्य में अन्य आवश्यक सुधार भी अपनी क्षमतानुसार किये जायेंगे । आप अपने अमूल्य परामर्श और सहयोग हमें यथासमय देते रहें ।

- सम्पादक

'विवेक-ज्योति' के पाठकों से निवेदन

जनवरी, २०१५ से 'विवेक-ज्योति' के मूल्य में परिवर्तन किया जा रहा है, इसकी विस्तृत सूचना पृष्ठ ४९४ में पढ़ें ।

प्रिंट आर्डर - २३,५००

२०१४ अक्तूबर -
सुदर्शन सौर- ४५४ , मयूर - ४९८

विवेक-ज्योति के आजीवन सदस्यों की सूची

१३२०. श्री माधो शरण शुक्ल, नैनी, इलाहाबाद (उ.प्र.)
१३२१. श्री रंजीत दवे 'कम्पाउन्डर', जालो (राज.)
१३२२. डॉ. मुनीश प्रसाद सक्सेना,गोमती नगर,लखनऊ
१३२३. श्रीदुर्गा मन्दिर समिति, सिवनी, चाँपा, (छ.ग.)
१३२४. श्री अरुण चौरसिया, जिराकपुर हाइट्स (पंजाब)
१३२५. श्री पी. एल. सिदार, रा. विद्युत वि.क.रायगढ़ (छ.ग.)
१३२६. श्री प्रवेश कुमार पांडेय, तेलीटोली, जशपुर
१३२७. प्राचार्य, शा. केलवा स्कूल, राजसमन्द (राज.)
१३२८. श्री साधनचन्द्र वैद्य, उद्यानमार्ग, उज्जैन (म.प्र.)
१३२९. श्री नीतीश प्रसाद शाह, गरुलिया (प.बंगाल.)
१३३०. श्री त्रिलोकेश्वर मिश्रा, हा. स्कूल, खारी, बालाघाट,
१३३१. श्री हेमन्त कुमार जंगीढ़, कपूरथल (दिल्ली)
१३३२. श्री सुभाष अग्रवाल, अवन्ती विहार, रायपुर (छ.ग.)
१३३३. श्री विजय सहारे, हाथीताल कॉलोनी, जबलपुर
१३३४. श्री रूपेन्द्र चन्द्राकर, दी.द.उ. नगर, रायपुर (छ.ग.)
१३३५. श्रीमती संध्या साहू, रामकुण्ड, रायपुर (छ.ग.)
१३३६. श्री अशोक कुमार, बगीचा, जि.-जशपुर (छ.ग.)
१३३७. श्री कृष्ण स्वरूप पाठक, इटावा (उ.प्र.)
१३३८. श्री प्रमोद सिंह वर्मा, गीताभवन, मथुरा (उ.प्र.)
१३३९. श्री चेतन आनन्द, जिला-कोर्ट, भिवानी (हरियाणा)
१३४०. श्री चेतन चन्द्राकर, कसारीडीह, दुर्ग (छ.ग.)
१३४१. श्री जे.पी./संध्या चन्द्राकर, डी.एफ.ओ., दुर्ग (छ.ग.)
१३४२. श्री अशोक कुमार जोशी, जैसलमेर (राज.)
१३४३. श्री सीताराम रघुवंशी, सोहगपुर, होशंगाबाद (म.प्र.)
१३४४. श्री कस्तूरी घीमीरे, रूपाईडीहा, बेहराइच (उ.प्र.)
१३४५. श्री सचिन शर्मा, जी.टी.बी. एनक्लेव, (दिल्ली)
१३४६. श्रीमती गीता सिंह, अशोक नगर, इलाहाबाद (उ.प्र.)
१३४७. डॉ. पूर्णेन्द्र दास, राम मोहल्ला, जोधपुर (राज.)
१३४८. विजया रविकान्त देशमुख, रेली, गोंदिया, (महा.)
१३४९. श्री रविन्द्र नाथ मैती, पातुली टाऊनशीप, कोलकाता
१३५०. श्री सुयश मैती, खड़गपुर, पूर्व मिदनापुर (प.बंगाल)
१३५१. श्री नीतल चन्द्र मैती, पूर्व मिदनापुर (प.बंगाल)
१३५२. श्री रामचन्द्र राय, कांदीवली, मुम्बई (पू) (महा.)
१३५३. श्री सोमेश द्विवेदी, कन्नामंगला, बैंगलोर (कर्नाटक)
१३५४. श्री परिजात शर्मा, कर्वे नगर, पुणे (महा.)
१३५५. श्री शैलेश एम. शुक्ल, खरप रोड, अकोला (महा.)
१३५६. श्री हरिहर ए. जिराफे, गोपाल नगर, अमरावती (महा.)
१३५७. श्री तुहीन चटर्जी, तारबहार, बिलासपुर (छ.ग.)
१३५८. श्री देवराम आसाराम शेन्डे, खाट रोड, भंडारा
१३५९. श्री आर.सी.एल. श्रीवास्तव, लखनऊ (उ.प्र.)
१३६०. श्री विद्या सागर ठाकुर, हजारी बाग (झारखण्ड)
१३६१. श्री डी.एन. बड्डे, उल्लास नगर, थाने (महा.)
१३६२. श्री संजय चिंचोलकर, महामाया, बिलासपुर (छ.ग.)
१३६३. श्री भरत आर. पटेल, गोधरा (गुजरात)
१३६४. श्री सुखीराम यादव, लभर्रा खुर्द, महासमुन्द
१३६५. श्री अर्पण गर्ग, संजय नगर, कोरबा (छ.ग.)
१३६६. श्री नरेशचन्द्र गुप्ता, लोहिया, मुजफ्फरनगर (उ.प्र.)
१३६७. श्री अरविंदभाई पटेल, मोटेरा, अहमदाबाद (गुजरात)
१३६८. डॉ. रामनिवास पराशर, सैदुलाजाब, (नई दिल्ली)
१३६९. श्री पटेल नारायण भाई/रणछोड़ भाई, बड़ौदा (गुज)
१३७०. श्री संजय कंचन, श्रीलिंगामपाली, हैदराबाद (आ.प्र.)
१३७१. श्री अरविंद नैय्यर, योगेश/यमुना नगर, (हरियाणा)
१३७२. श्रीमती प्रियंका खरे, सरगुजा विश्ववि. अम्बिकापुर
१३७३. श्री सतबीर सिंह, शान्ति नगर, भिवानी (हरियाणा)
१३७४. श्री बलवन्त सिंह, बी.टी.एम.रोड, भिवानी (हरि.)
१३७५. चित्रगुप्त ज्ञानपीठ, शास्त्री चौक, बालाघाट (म.प्र.)
१३७६. श्री डमरू धर, भिलाई नगर, (छ.ग.)
१३७७. श्री एस.एन. मढ़रिया, डगनिया, रायपुर (छ.ग.)
१३७८. डॉ. पूनम मेहतौवी, पानीपत (हरियाणा)
१३७९. श्री पवनकुमार राणा, चर्खीदादरी, भिवानी (हरि)
१३८०. श्री आनन्द प्रकाश जयसवाल, भिवानी (हरियाणा)
१३८१. चारभुजा ज्वेलर्स, जैसलमेर (राजस्थान)
१३८२. श्री विक्रम जे. चौधरी, बक्शी बा. कटक (उड़ीसा)
१३८३. श्री सुनील वोरा, विदर्भ कॉलोनी, यवतमाल (महा.)
१३८४. श्री अनिल कुमार महतो, गुड़गाँव (हरियाणा)
१३८५. श्रीमती सरिता ताई सखारे, अकोला (महा.)
१३८६. श्री मंगत चौधरी, गली मतवाली हिसार (हरियाणा)
१३८७. रामकृष्ण मिशन विद्यालय, नरेन्द्रपुर, कोलकाता
१३८८. रामकृष्ण मिशन विद्यालय, जु.से., नरेन्द्रपुर, कोलकाता
१३८९. श्री एस.के.केहरी, कबीरनगर, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)
१३९०. कोलम्बिया इंजनियरिंग इंस्टीट्युट, माँढर, रायपुर (छ.ग.)
१३९१. कोलम्बिया फार्मेसी इंस्टीट्युट, माँढर, रायपुर (छ.ग.)
१३९२. डॉ. के सुधाकर राव, छन्नीरोड, वड़ोदरा (गुजरात)
१३९३. श्री कैलास शंकर चतुर्वेदी, माधवगढ़, सतना
१३९४. डॉ. एस पंडित, पोखड़िया, बेगूसराय (बिहार)
१३९५. श्री पी. योगेन्द्र जोशी, सुखलिया, इन्दौर (म.प्र.)
१३९६. डॉ. गगन वर्मा, शास्त्री वार्ड, गोंदिया (महा.)
१३९७. श्री अंशुल वी. अरजारे, टी.जे.रोड, सेवारी, मुम्बई
१३९८. डॉ. बी.एस. श्रीवास्तव, जूरन, मुजफ्फरपुर, (बिहार)
१३९९. श्री जीतेन्द्र श्यामजीभाई पटेल, थाने, मुम्बई (महा.)
१४००. साई गोविन्दा सामन्त, श्यामलाताल, चम्पावत

वर्ष ५२ अक्तूबर २०१४ अंक १०

वेद की ऋचाओं में राष्ट्रीय एकता के मंत्र

ॐ संगच्छध्वं संवदध्वं
सं वो मनांसि जानताम् ।
देवा भागं यथापूर्वे
संजानाना उपासते ।।

– हे अमृत-पुत्रो ! जिस प्रकार सन्मार्ग के प्रवर्तक देवतागण संघबद्ध होकर, एकमत से लोकमंगल की, लोक-कल्याण की उपासना करते हैं, उसी प्रकार तुम सभी लोग एक साथ मिलकर मानवता के कल्याण के लिये आगे बढ़ो। तुम सभी एक ही ईश्वर की सन्तान हो, एक परमात्मा के पुत्र हो, तुम्हारा पालन-पोषण-रक्षण एक ही ईश्वर के द्वारा होता है, प्रकृति के पंचतत्त्व - जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी, आकाश, आदि बिना भेद-भाव के तुम सबकी सेवा करते हैं । अत: परस्पर भेद और विरोध का परित्याग कर विश्व-बन्धुत्व का उद्घोष करो और परस्पर सद्भावना का विकास करते हुये एक-दूसरे के मन को प्रेम, सहिष्णुता एवं करुणा से परिपूर्ण करो।

पुरखों की थाती

नैव देवा न गन्धर्वा न पिशाचा न राक्षसाः ।
न चान्ये स्वयम्-अक्लिष्टम्-उपक्लिश्नन्ति मानवम् ।।४१८।।

– जिसने कोई दुष्कर्म नहीं किया है; उसे न गन्धर्व, न पिशाच, न राक्षस और न ही कोई दूसरा कष्ट दे सकता है।

नियत-विषयवर्ती प्रायशो दण्डयोगात्-
जगति परवशेऽस्मिन् दुर्लभः साधुवृत्तः ।।४१९।।

– इस पराधीन जगत में प्राय: सभी लोग दण्ड के भय से ही अपने-अपने कर्तव्य-पालन में लगे रहते हैं। स्वेच्छापूर्वक उत्तम आचरण करनवाले सज्जन लोग बड़े दुर्लभ हैं।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।।४२०।।

– नीतिज्ञ चाहे निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मीजी चाहे आएँ या उनकी जहाँ भी इच्छा हो चली जायँ, मृत्यु चाहे आज ही हो जाय अथवा एक युग के बाद हो, परन्तु धीर व्यक्ति अपने न्याय के मार्ग से एक कदम भी विचलित नहीं होते हैं।

उद्घाटित नवद्वारे पञ्जरे विहगोऽनिलः ।
यत्तिष्ठति तदाश्चर्यं प्रयाणे विस्मयः कुतः ।।४२१।।

– नौ द्वारों वाले इस देह-पिंजरे में प्राणवायु के रूप में जीवात्मा पक्षी निवास करता है। इसके रहने में ही आश्चर्य की बात है, पिंजरे को छोड़कर बाहर निकल आने में नहीं।

जीवन का अन्तिम पर्व

स्वामी विवेकानन्द

(स्वामीजी ने अपनी आत्मकथा नहीं लिखी, तथापि उनके स्वयं के पत्रों, व्याख्यानों और उनके गुरुभाइयों के संस्मरणों में कहीं-कहीं उनके अपने जीवन-विषयक बातें आ गयी हैं। उनकी ऐसी ही उक्तियों का एक संग्रह कोलकाता के अद्वैत आश्रम से 'Swami Vivekananda on Himself' शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। उसी के आधार पर बँगला के सुप्रसिद्ध साहित्यकार शंकर ने 'आमि विवेकानन्द बोलछि' नामक एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित कराया है। हम उपरोक्त दोनों ग्रन्थों तथा कुछ अन्य सामग्री के साथ यह संकलन क्रमश: प्रकाशित कर रहे हैं। इससे स्वामीजी के अपने ही शब्दों में उनके जीवन तथा लक्ष्य का एक प्रेरक विवरण प्राप्त होगा। इसका संकलन 'विवेक-ज्योति' के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

बेलुड़ मठ, ११ दिसम्बर, १९०० : परसों रात को मैं यहाँ पर आ पहुँचा हूँ। किन्तु हाय, इतनी शीघ्रता से लौटने पर भी कोई लाभ नहीं हुआ। बेचारे कैप्टन सेवियर की मृत्यु कुछ दिन पहले ही हो चुकी है, इस प्रकार दो अंग्रेज महानुभावों ने हमारे लिए, हिन्दुओं के लिए आत्मोत्सर्ग कर दिया है। यदि कोई शहीद हुए हों, तो ये ही हैं।[१]

बेलूड़ मठ, १५ दिसम्बर, १९०० : तीन दिन पहले मैं यहाँ पहुँचा हूँ। यहाँ मेरा आगमन बिल्कुल अप्रत्याशित था और सभी लोग बड़े विस्मित हुए। यहाँ मेरी अनुपस्थिति में कार्य की प्रगति मेरी आशा से भी कहीं अधिक हुई है। केवल श्री सेवियर अब नहीं रहे। उनकी मृत्यु निश्चय ही एक बड़ा सदमा था।[२]

बेलूड़ मठ, १९ दिसम्बर, १९०० : वस्तुत: मैं तो ऋतु के साथ विचरण करनेवाला एक पक्षी हूँ। आनन्द से मुखरित तथा कर्मव्यस्त पेरिस, गम्भीर प्राचीन कांस्टेंटिनोपल, चमकदार छोटा एथेंस, पिरामिड से सुशोभित काहिरा, इन सभी स्थलों को मैं पीछे छोड़ आया हूँ; और अब यहाँ पर मैं गंगा-तटवर्ती मठ में अपने छोटे-से कमरे में बैठकर यह पत्र लिख रहा हूँ। चारों ओर कितनी शान्त निस्तब्धता छाई हुई है! विशाल नदी उज्ज्वल सूर्य-किरणों में नृत्य कर रही है; कभी-कभी एक-दो माल ढोनेवाली नावों के आगमन से वह स्तब्धता क्षण भर के लिए भंग हो जाती दीख पड़ती है। यहाँ इस समय जाड़े का मौसम है; परन्तु प्रतिदिन दोपहर में धूप तथा गरमी होती है। ... चारों ओर हरित् तथा स्वर्णिम वर्ण का बाहुल्य है; और तृणराशि मानो मखमल-सदृश शोभायमान है। तो भी वायु शीतल, स्वच्छ तथा सुखप्रद है।[३]

बेलूड़ मठ, दिसम्बर, १९०० : मेरा हृदय अत्यन्त दुर्बल हो गया है। ऐसा नहीं लगता कि जलवायु-परिवर्तन से कोई लाभ होगा। स्मरण नहीं आता कि पिछले चौदह वर्षों के दौरान मैं लगातार तीन महीने कहीं एक जगह रहा होऊँ। दूसरी ओर यदि किसी संयोगवश मुझे एक ही स्थान पर कुछ महीने रहने को मिले, तो मैं आशा करता हूँ कि मुझे कुछ लाभ होगा। मैं इसे स्वीकार करूँगा, वैसे मुझे लगता है कि इस जीवन का मेरा कार्य पूरा हो चुका है। भलाई और बुराई, पीड़ा और आनन्द से होकर मेरी जीवन-नौका अग्रसर हो रही है। इस जीवन में मुझे जो एक महान शिक्षा दी गयी है, वह यह है कि यह जीवन दुखमय है और दुख के सिवाय अन्य कुछ भी नहीं है। जगदम्बा जानती हैं कि सबसे अच्छा क्या है। हममें से प्रत्येक अपने कर्मों के अधीन है और हमें वही चला रहा है, इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। जीवन में एक ही चीज है, जो किसी भी कीमत पर प्राप्त करने योग्य है और वह है प्रेम – ऐसा अपार और असीम प्रेम, जो आकाश के समान विस्तृत तथा समुद्र के समान गहरा हो। यही जीवन की एक महान उपलब्धि है। जिन्हें यह प्राप्त होता है, वे धन्य हैं।

बेलूड़ मठ, २६ दिसम्बर, १९०० : हमारे प्रिय मित्र श्री सेवियर मेरे पहुँचने के पहले ही परलोक सिधार चुके हैं। उनके द्वारा स्थापित आश्रम के किनारे से जो नदी बहती है, उसी के तट पर हिन्दू रीति से उनका अन्तिम संस्कार किया गया था। ब्राह्मणों ने पुष्प-माल्य-शोभित उनकी देह को वहन किया और ब्रह्मचारियों ने वेद-पाठ किया था।

इस बीच हम लोगों के आदर्श के लिए दो अंग्रेजों ने आत्मोत्सर्ग कर दिया है। इसके फलस्वरूप प्राचीन इंग्लैंड तथा उसकी वीर सन्तानें मेरे लिए और भी प्रिय हो चुकी हैं। इंग्लैंड की सर्वोत्तम रुधिरधारा से महामाया मानो भावी भारत के

पौधे को सींच रही हैं – महामाया की जय हो। ... मैं स्वयं दृढ़ तथा शान्त हूँ। आज तक कोई भी घटनाचक्र मुझे विचलित नहीं कर सका है; आज भी महामाया मुझे खिन्न न होने देंगी।

शीत ऋतु के आगमन के साथ ही यह स्थान अत्यन्त सुखद हो उठा है। अनाच्छादित बर्फ के आवरण से हिमालय और भी सुन्दर हो उठेगा।[५]

बेलूड़ मठ, २६ दिसम्बर, १९०० : देख रहा हूँ आगे-पीछे, लगता है सब ठीक-कुशल। मेरे परम दुखों में भी तो, वही आत्मा ज्योतिर्मय।[६]

बेलूड़ मठ, २६ दिसम्बर, १९०० : कल मैं मायावती जा रहा हूँ। एक बार वहाँ जाना अतीव आवश्यक है।[७]

मायावती, ६ जनवरी, १९०१ : यह स्थान अत्यन्त सुन्दर है और इन लोगों (आश्रमवासियों) ने इसे और भी मनोरम बना लिया है। कई एकड़ में फैले इस विशाल स्थान को यत्नपूर्वक रखा गया है। मुझे आशा है कि श्रीमती सेवियर भविष्य में भी इसकी देखभाल कर सकेंगी। वैसे उनकी तो सदा से ही ऐसी आशा रही है। ...

कलकत्ते के प्रथम दिन के स्पर्श ने ही मेरा दमा वापस ला दिया था। वहाँ मैं दो सप्ताह रहा और हर रात उसका दौरा आता था। खैर, हिमालय में मैं बड़ी अच्छी तरह हूँ।

यहाँ खूब बरफ पड़ी है, मार्ग में प्रबल हिमझंझावात में पड़ गया था। पर ठण्ड उतनी अधिक नहीं है। यहाँ आने के मार्ग में दो दिन ठण्ड लगने से, लगता है मेरा बड़ा उपकार हुआ है।

आज मैंने श्रीमती सेवियर के जमीन को देखते हुए बरफ पर करीब एक मील चढ़ाई की। सेवियर ने हर जगह बड़े सुन्दर रास्ते बनवाये हैं। अनेक उद्यान, खेत, बगीचे और विशाल वन, सब कुछ उनकी जमीन में हैं। रहने के कमरे बड़े सादे, स्वच्छ, सुन्दर और सर्वोपरि आवश्यकता के अनुरूप हैं। ...

चारों ओर छह इंच बर्फ फैली हुई है; चमकीली और मधुर धूप निकली हुई है और इस समय दोपहर में हम लोग बाहर बैठकर पढ़ रहे हैं। हमारे चारों ओर बरफ-ही-बरफ है! हिमपात के बावजूद यहाँ का जाड़ा काफी मृदु है। वायु शुष्क तथा स्निग्ध है; और जल का तो कहना ही क्या![८]

---

१. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३६३; **२.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६३-६४; **३.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६४; **४.** The Complete Works of Swami Vivekananda, खण्ड ९, पृ. १५१-५२; **५.** विवेकानन्द साहित्य, खण्ड ८, पृ. ३२२; **५.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६५-६६; **६.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६६; **७.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६७; **८.** वही, खण्ड ८, पृ. ३६७;

विश्वगुरु विवेकानन्द जब जन्म लेते हैं

विजयकुमार श्रीवास्तव, सीतापुर (उ.प्र.)

प्राणों के प्रण की प्रतिष्ठा का दीप जला,
विरले ही पुरुष सिंह राष्ट्रनिष्ठ होते हैं।
राष्ट्र के गौरव की थाम कर दिव्य ज्योति,
आत्म-चिन्तन विशाल विश्व को देते हैं।।१।।
सांस्कृतिक परम्परा हो जाये न तार-तार,
इसका ही चिन्तन ये दिव्य पुरुष करते हैं।
जोड़कर समाज की व्यवस्था के तन्त्रों की,
आत्मा में सहज रूप प्रेम-रस भरते हैं।।२।।
नींद के झरोखों से जागृति को खींचकर
सोये-अलसाये, पथभ्रष्ट को जगाते हैं।
वासना के दल-दल से भीरुता के हर पल से,
प्रेरणा के स्रोत बन मुक्त करवाते हैं।।३।।
व्यक्ति में विचारशक्ति का अजस्र दे प्रवाह,
रुढ़ियों को तोड़ योग-क्षेम भर देते हैं।
कर्म की कुशलता हेतु धैर्य और सहन शक्ति,
भरकर युवाओं में संचित कर देते हैं।।४।।
धर्म की कसौटी पर खेलता मनुजवाद,
शीर्ष कर्म का विवेक विश्व को देते हैं।
और वसुन्धरा हो जाती है धन्य-धन्य,
विश्व गुरु विवेकानन्द जन्म जब लेते हैं।।५।।

अजर अमर है आत्मतत्त्व

कमल सिंह सोलंकी 'कमल', होशंगाबाद, (म.प्र.)

अजर अमर है आत्मतत्त्व केवल भौतिक तन मरता है।
कर्मों के अधीन जीव अविरल जीवन क्रम चलता है।।
पृथ्वी, जल, वायु, अम्बर और अग्नि तत्त्व से तेज लिया,
आत्मा हृदय स्थापित कर कर्मानुसार जग भेज दिया।
जीवन जन्म लेते ही फिर मृत्यु-पथ चलने लगता है।।
परमार्थ प्रेम का है अकाल जग में माया के विषय जाल,
नहीं भजन किया आ गया काल मृत्यु न छोड़े किसी हाल
प्रारब्ध कर्म का भार 'कमल' मन युवा, शिथिल तन ढलता है।।
जग राग द्वेष छल कपट मोह माया को गले लगाया,
श्रीरामकृष्ण का भजन नहीं देहाभिमान अपनाया।
नारायण के बिना जगत में मुक्ति मार्ग नहीं मिलता है।।

धर्म-जीवन का रहस्य (६/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

महाराज अब कीजिये सोई ।
सब कर धरम सहित हित होई ।। २/२९२/८
ग्यान निधान सुजान सुचि नरपाल धरि धरम ।
तुम्ह बिनु असमंजस समन को समरथ एहि काल।।२/२९२

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्दजी महाराज, समुपस्थित अन्य सन्तवृन्द, भगवत्कथा-रसिक श्रोता महानुभाव, भक्तिमती देवियो, मैं आप सबके प्रति अपना सादर नमन करता हूँ।

सन्तों का ऐसा स्वभाव है कि वे निरन्तर दूसरों को बड़प्पन देते रहते हैं। मानस में एक प्रसंग आता है कि पक्षिराज गरुड़ के हृदय में भ्रम हुआ और वे उसका निराकरण करने हेतु देवर्षि नारद के पास गये, ब्रह्माजी के पास गये, शंकरजी के पास गये और अन्त में भगवान शंकर ने उनसे कहा कि जब तुम काकभुशुण्डि से कथा सुनोगे, तभी तुम्हारा भ्रम दूर होगा। बड़ी विलक्षण बात है, गरुड़ पक्षिराज हैं और कौवा पक्षियों में सबसे निम्न कोटि का माना जाता है। जब पक्षिराज को कौवे के पास भेजा गया और उन्होंने बड़ी श्रद्धा से कथा श्रवण किया, भुशुण्डिजी के प्रति कृतज्ञता प्रगट की कि आपने मेरे भ्रम का निवारण कर दिया। किन्तु भुशुण्डिजी को यह गर्व नहीं हुआ कि हाँ, मैंने इनके भ्रम का निवारण किया है, बल्कि वे बोले – प्रभु ने अपनी लीला में आपके हृदय में जिस भ्रम की सृष्टि कर दी, उसका एक उद्देश्य यह था कि प्रभु मुझे सम्मान दिलाना चाहते थे, इसलिए उन्होंने एक ऐसी लीला कर दी कि

पठइ मोहि मिस खगपति तोही ।
रघुपति दीन्हि बड़ाई मोही ।। ७/७०/४

प्रभु कौवे को इतना सम्मान देना चाहते थे कि पक्षिराज भी उनके माध्यम से कथा श्रवण करते हैं। इसीलिए यह कौतुक हुआ है, नहीं तो भला आप लोगों में भ्रम कहाँ? यही सत्य यहाँ भी सामने दिखाई दिया। यहाँ पर भी वही दृश्य है। हमारे यहाँ संन्यासियों को परमहंस कहने की परम्परा है। काकभुशुण्डि की कथा में भी कौवा कहता था और हंस सुनते थे और यहाँ पर भी कौवा कह रहा है और हंस सुन रहे हैं। अत: यह भी परम्परा के अनुकूल है।

जो प्रसंग चल रहा था, गुरु वशिष्ठ ने असमंजस की समस्या का समाधान पाने के लिए एक सूत्र महाराज जनक के सामने रखा। कहा कि इस समय धर्म को लेकर जो बड़ी जटिल स्थिति है, उसमें आपको छोड़कर मुझे ऐसा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं देता, जो असमंजस की समस्या का समाधान कर सके। कुछ ऐसा निर्णय किया जाना चाहिए कि सबके धर्म की रक्षा हो और सबका हित हो। धर्म के सन्दर्भ में ये दोनों ही सूत्र बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। यही सारे इतिहास का और आज का भी सत्य है कि धर्म को लेकर समाज में एक भ्रम फैला हुआ दिखाई देता है। धर्म को लेकर, इस शब्द के अर्थ को लेकर प्रारम्भ से ही यहाँ विविध ऋषियों और मुनियों द्वारा यह प्रश्न उठाया गया कि धर्म का अर्थ क्या है?

संस्कृत व्याकरण में धर्म शब्द 'धृ' धातु से बना हुआ है – **'धृ' धारणे इति धर्मः** – जो धारण करता है, वह धर्म है। अभिप्राय यह कि जिसके आधार पर समाज सुस्थिर है, उसी का नाम धर्म है। दूसरे महापुरुष ने उसकी व्याख्या करते हुए कहा – **यतो अभ्युदय-निःश्रेयसि ततो धर्मः** – जिसके द्वारा मनुष्य को अभ्युदय की और नि:श्रेयस की भी प्राप्ति होती है, वह धर्म है। अभ्युदय का तात्पर्य है – भौतिक जगत् की उन्नति और नि:श्रेयस् का तात्पर्य है मोक्ष। जिसके माध्यम से व्यक्ति लोक और परलोक अर्थात् अभ्युदय और नि:श्रेयस्, दोनों को पा लेता है, वही धर्म है। एक तीसरे महापुरुष ने यह सूत्र दिया – वस्तुत: यह तो ठीक ही है कि धर्म के द्वारा समाज सुस्थिर रहता है, उसकी रक्षा की जाती है। धर्म के द्वारा लोक-परलोक, दोनों की समस्याओं का समाधान होता है, परन्तु इस धर्म के सन्दर्भ में हम निर्णय कैसे करें? तो उन्होंने कहा – **चोदना लक्षणो अर्थो धर्म** –

शास्त्र के द्वारा धर्म के विषय में जो सूत्र दिये गये हैं, उसके अनुसार। व्यक्ति बुद्धि के द्वारा अपने धर्म का निर्णय नहीं कर सकता है, शास्त्र जिसे धर्म कहता है, वस्तुत: वही धर्म है। भले ही वह व्यक्ति की बुद्धि को धर्म न प्रतीत होता हो, पर शास्त्र प्रतिपादित कार्य ही धर्म है और उसका समर्थन भगवान की वाणी में भी है –

तस्मात् शास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्य-व्यवस्थितौ ।।

शास्त्र के द्वारा ही व्यक्ति को इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ना चाहिए – क्या धर्म है और क्या अधर्म है? ये सारे सूत्र बड़े महत्त्व के हैं। परन्तु इसके बाद भी समस्या का सही निदान नहीं मिल पाता, इसलिए कि शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट धर्म की व्याख्या भी तो व्यक्ति के द्वारा ही की जायेगी। उसका व्याख्याता, विस्तार करने वाला भाष्यकार, वह तो व्यक्ति ही होगा। शास्त्र में आए हुए वाक्य का वास्तविक अर्थ क्या है, यह व्यक्ति ही बताता है। ऐसी स्थिति में जब शास्त्र के वाक्यों की अनेक व्याख्याएँ हमारे सामने हों, तो हम किसे धर्म के रूप में स्वीकार करें?

इन्हीं प्रश्नों का समाधान देने के लिए ही भगवान श्रीराम का अवतार हुआ है। अपने जीवन के माध्यम से, चरित्र के माध्यम से इन्हीं प्रश्नों का समाधान देने के महानतम उद्देश्य से ही भगवान श्रीराम अवतरित होते हैं। अन्यथा, यदि रावण का वध ही उद्देश्य होता, तो उसके लिए तो उनका संकल्प ही यथेष्ट था। पर जब वे मनुष्य के रूप में आये और मनुष्य के रूप में आचरण किया, तो उनका उद्देश्य यह था कि ईश्वर होते हुए भी अपने मानव-चरित्र के माध्यम से एक सेतु का निर्माण करना। जैसे नदी के ऊपर यदि पुल बना दिया जाय, तो व्यक्ति के लिए उसे पार करना सहज हो जाता है, वैसे ही भगवान राम ने इस संसार सागर को पार करने के लिए अपने मानव-चरित्र को माध्यम बनाया। वे भक्तों के लिये नर-रूप धारण करके ऐसे चरित्र करते हैं, जो संसार रूपी समुद्र को पार उतरने के लिए पुल के समान है –

भगत हेतु भगवान प्रभु राम धरेउ नर रूप ।। ७/७२ क
चरित करत नर अनुहरत संसृति सागर सेतु ।। २/८७

भगवान के विविध अवतार हैं और उनमें से प्रत्येक अपने आप में परिपूर्ण होते हैं, किन्तु देश-काल की अपेक्षा से जिस युग की जो विशेष आवश्यकता होती है, उसका समाधान उनके द्वारा किया जाता है। उनके द्वारा यह जो समाधान दिया जाता है, उसके भी दो भिन्न रूप हैं। इस सन्दर्भ में रामायण में महाराज मनु का परिचय देते हुए जो पंक्तियाँ लिखी गई हैं, मैं उन्हीं की ओर आपका ध्यान आकृष्ट करना चाहूँगा। गोस्वामीजी केवल इतना ही कह सकते थे कि स्वायम्भुव मनु ने राज्य किया और वैराग्य न होने पर भी वे विवेकपूर्वक राज्य का परित्याग करके भगवान को पाने के लिए वन चले गये। परन्तु उन्होंने मनु का परिचय देते हुए बड़े विस्तार से जो कुछ कहा, उसका हर शब्द बड़े महत्त्व का है। उन्होंने पहला परिचय दिया – महाराज मनु और सतरूपा वे हैं, जिनसे मानव जाति का निर्माण हुआ –

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा ।
जिन्ह ते भै नर सृष्टि अनूपा ।। १/१४२/१

इस परिचय में आपने ये पंक्तियाँ पढ़ी होंगी, आप उसका अर्थ जानते होंगे। वह क्रम इस प्रकार है – राजा उत्तानपाद उनके पुत्र थे, जिनके पुत्र हरिभक्त ध्रुवजी हुए। मनुजी के छोटे पुत्र का नाम प्रियव्रत था। देवहूति उनकी कन्या थी, जो कर्दम मुनि की प्रिय पत्नी हुई, जिन्होंने आदिदेव, दीनों पर दया करने वाले, समर्थ एवं कृपालु भगवान कपिल को गर्भ में धारण किया –

दम्पति धरम आचरन नीका ।
अजहुँ गाव श्रुति जिन्ह कै लीका ।।
नृप उत्तानपाद सुत तासू ।
ध्रुव हरिभगत भयउ सुत जासू ।।
लघु सुत नाम प्रियब्रत ताही ।
बेद पुरान प्रसंसहिं जाही ।।
देवहूति पुनि तासु कुमारी ।
जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी ।।
आदि देव प्रभु दीनदयाला।
जठर धरेउ जेहिं कपिल कृपाला ।।१/१४२२-६

वे कहते हैं कि महाराज मनु का आचरण धर्म के अनुरूप था। उन्हीं महाराज मनु का पुत्र उत्तानपाद और कन्या का नाम देवहूति है। तो यहाँ मनु के साथ उनके पुत्र और पुत्री का परिचय देने की क्या आवश्यकता थी? उनसे हमें क्या लेना-देना है? पर यहाँ यह जो बात बताई गई, वह बड़े महत्त्व की है। बोले महाराज मनु के पुत्र उत्तानपाद थे और राजा उत्तानपाद की दो रानियाँ हैं, सुरुचि और सुनीति। ध्रुव का जन्म सुनीति से होता है। महाराज उत्तानपाद का आकर्षण सुरुचि के प्रति अधिक है। वे उसी के अनुराग में रंगे रहते हैं और सुनीति की मानो उपेक्षा करते हैं। सुनीति के ही गर्भ से ध्रुव का जन्म हुआ। ध्रुव एक बार जब पिता का स्नेह पाने

के लिए उनकी गोद में बैठने के लिए मचल पड़े, तब सुरुचि ने उन्हें झिड़कते हुए कहा – इस गोद में स्थान पाने के लिए तो तुम्हें मेरे गर्भ से जन्म लेना चाहिए था। तुमने जिस माता के गर्भ से जन्म लिया है, उसके पुत्र को इस गोद में बैठने का अधिकार नहीं है। ध्रुव के हृदय में बड़ी चोट लगी, बड़ी पीड़ा हुई। वे व्याकुल होकर अपनी माँ के पास गये। माँ ने उनके हृदय में विद्वेष की सृष्टि नहीं की, अपितु कहा – पुत्र, स्थिति तो यही है, पर इसका समाधान यह है कि तुम भगवान को प्रसन्न करने की चेष्टा करो। ध्रुव वन में चले जाते हैं और छह वर्ष की आयु में ही भगवान का दर्शन पा लेते हैं। वे धन्य हो गये और ध्रुव को ही वह राज्य प्राप्त हुआ। साथ ही ध्रुव को इस रूप में भी प्रस्तुत किया गया कि आकाश में ध्रुव तारे के रूप में सदा वे विद्यमान रहते हैं। एक ओर तो ध्रुव की यह गाथा है कि कैसे मनु के पुत्र के द्वारा ध्रुव जैसे भक्त का जन्म हुआ; दूसरी ओर उनकी पुत्री देवहूति का कर्दम ऋषि से विवाह हुआ और उनके गर्भ से सांख्य-शास्त्र के प्रणेता भगवान कपिल का जन्म हुआ।

यहाँ उस सूत्र पर ध्यान दीजिए। ध्रुव के सामने भगवान का एक रूप आया और देवहूति के सामने भगवान दूसरे रूप में आए। इसका सूत्र यह है कि मानव जाति का कल्याण कैसे हो? यदि हिन्दू धर्म के रूप में धर्म की प्रशंसा की जाती है, तो उसका विशेष अर्थ इतना ही है कि इसमें धर्म का एक बहुत व्यापक रूप निरूपित हुआ है। धर्म का एक पक्ष एकांगी हो सकता है और दूसरा पक्ष व्यापक भी हो सकता है। वैसे कभी-कभी समाज में एक पक्ष की भी आवश्यकता होती है, पर व्यापक रूप में इसका अभिप्राय यह है कि यदि कहा जाय कि एकमात्र यही मनुष्य का कल्याण का उपाय है, तो उसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति धर्म को पूरी तरह से स्वीकार नहीं कर पाता है। उस प्रकार का धर्म कहीं-न-कहीं सीमाओं में घिर जाता है।

इस प्रसंग में धर्म के दो पक्ष बताए गये हैं – प्रवृत्ति और निवृत्ति। ध्रुव मानो प्रवृत्ति पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं और देवहूति के गर्भ से जन्म लेनेवाले भगवान कपिल निवृत्ति पक्ष का। प्रवृत्ति धर्म क्या है? ध्रुव के सामने जो भगवान प्रगट हुए, वे कामना को पूर्ण करनेवाले भगवान हैं। ध्रुव ने अपमान से क्षुब्ध होकर राज्य पाने के लिए भगवान का आश्रय लिया और उनकी कृपा से अनुपम लोक को पाया –

ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ।
पायउ अचल अनूपम ठाऊँ।। १/२६/५

यही मानो प्रवृत्ति मार्ग है। प्रश्न उठता है कि प्रवृत्ति श्रेष्ठ है या निवृत्ति? इस सन्दर्भ में रामायण की दृष्टि बड़ी व्यापक है। प्रवृत्ति श्रेष्ठ है या निवृत्ति? इस प्रश्न का उत्तर निरपेक्ष रूप से देना सम्भव नहीं है। किसी के लिए प्रवृत्ति कल्याणकारी है, तो किसी के लिए निवृत्ति। यद्यपि शास्त्र परम फल के रूप में निवृत्ति की ही महिमा का गायन करते हैं, पर व्यक्ति यदि निवृत्ति का अधिकारी नहीं है और उस दिशा में बढ़ने की चेष्टा करे, तो वह निवृत्ति मार्ग न स्वीकार करने जैसा ही होगा। संन्यास सभी आश्रमों में सर्वश्रेष्ठ आश्रम है। संन्यासी को हम भगवान नारायण का रूप मानते हैं। किसी ने गोस्वामीजी से पूछा – महाराज, संन्यास की बड़ी महिमा है, मैं संन्यास ले लूँ क्या? उन्होंने एक बड़ा सांकेतिक उत्तर दिया – भाई, तुममें वह क्षमता है या नहीं, इसका तुम्हीं निर्णय कर सको, तो ठीक होगा। उन्होंने एक दृष्टान्त देते हुए कहा कि यदि जल पीना है तो घड़े की जरूरत है। कुँए से पानी तो घड़े में ही खींचा जायेगा। रस्सी चाहिए और घड़ा चाहिए। वे कहते हैं कि रस्सी मानो साधन है और घड़ा पात्र है। वे बोले कि यदि जीवन में कृतकृत्यता प्राप्त करने के लिए, तृप्ति पाने के लिए, साधना के मार्ग में संन्यास का आश्रय लेते हैं, तो हमें तृप्त करनेवाला जीवनदायी जल मिलेगा। पर यदि कोई घड़े की महिमा सुनकर उतावलेपन में गीली मिट्टी से ही घड़ा बना ले और उसे अधसूखा ही लेकर उसमें रस्सी बाँधकर कुएँ में डाल दे, तो क्या होगा?

उसकी एक प्रक्रिया है, मिट्टी को गीला करके उसे आकृति दीजिए। फिर आग में पकाकर उसे पक्का कीजिए, तब वह घड़ा जल खींचने के योग्य होगा। और यदि कच्चा घड़ा जल में डाल दिया जायेगा, तो वह स्वयं गल जायेगा। जल तो वह ला ही नहीं सकेगा, बल्कि वह जल को भी गन्दा कर देगा। गोस्वामीजी सारी बात अपने ऊपर ही घटा लेते हैं। 'विनय-पत्रिका' (१७३/४) में वे कहते हैं –

बिगरत मन संन्यास लेत, जल नावत आम घरो सो।।

❖ (क्रमशः) ❖

सारगाछी की स्मृतियाँ (२४)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराज जी के साथ हुये वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्यानन्द और ब्रह्मचारी बोधमय चैतन्य ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' के पृष्ठों में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – अच्छा महाराज ! आपकी दीक्षा के समय माँ ने ठाकुर के सम्बन्ध में आपसे क्या कहा था?

महाराज – कुछ नहीं ! माँ तो जानती थीं कि हमलोग सब कुछ जानकर ही गये हैं। उस दिन जयरामबाटी में मेरा उपवास था। दस बजे माँ ने बुलवाया। जाकर देखता हूँ तो, दो आसन बिछाये गये हैं और सामने कोशा-कुशी रखी हुयी है। मैं बैठ गया। माँ ने मुझे आचमन करने को कहा।

प्रश्न – क्या माँ ने मानस-पूजा के बारे में कुछ बताया था?

महाराज – नहीं। तुमलोगों के गुरुदेव नये लोगों को दीक्षा देते हैं, इनमें से मात्र पाँच लोग ही जानते हैं, इसलिये उनलोगों को सब कुछ बताना पड़ता है। इसके बाद माँ ने मन्त्र दिया। उन्होंने मुझे एक ठाकुर का मन्त्र दिया और एक दूसरा मन्त्र दिया, जिसका मैं अपने बचपन से जप करता था। केवल उसे उन्होंने थोड़ा-सा बदल दिया था। इसके बाद उन्होंने मुझे जप करने को कहा। १०८ भी नहीं हुआ कि माँ अचानक उठकर गयीं और कोई एक कार्य करके चली आयीं। उसके बाद मैं वस्त्र और फूल लेकर गया था, उसे माँ को प्रदान किया, पाँच मिनट में ही सब कुछ हो गया। उसके बाद भोजन के समय खाना खाया।

प्रश्न – क्या आपने प्रसाद खाया था?

महाराज – नहीं, वह सब कुछ नहीं था, सब कुछ सामान्य था।

प्रश्न – आप जब पहली बार जयरामबाटी गये थे, तब कोई एक घटना घटी थी न?

महाराज – मैं हावड़ा से ट्रेन में चढ़ा। लगता है इंटर क्लास में था, लोग नहीं थे, अधिकतम एक-दो लोग रहे होंगे। सामने एक व्यक्ति बैठा हुआ था। उसने मुझसे पूछा – "कहाँ जाइयेगा?" उस समय चारों ओर अँग्रेजी गुप्तचरों का भय था। मैं उपेक्षा करने का प्रयास कर रहा था। उसको मैंने ठीक नहीं बताया कि मैं कहाँ जा रहा हूँ। स्टेशन पर उतर कर देखता हूँ कि वहाँ वही आदमी अकेले है, रास्ता जानता नहीं हूँ। विवश होकर उसी से पूछने पर उसने कहा – "मेरे साथ चलिये।" उसके साथ गया, तो उसके घर में पहुँच गया। देखता हूँ कि वह दामाद के जैसा मेरा स्वागत-सत्कार कर रहा है। तालाब से मछली पकड़वाया। कारपेट के आसन पर भोजन करने को दिया। दोपहर में विश्राम कराया। शाम को एक आदमी को साथ में देकर कहा –'अपने-हाथ की पोटली को इसे दे दीजिये। कुछ पैसा दे दीजियेगा।' मेरा तो बचपन से ही सम्मान-सत्कार पाने का अभ्यास है। क्योंकि गुरु-वंश - जमींदार-वंश है तो! मैंने सोचा ये सब तो स्वाभाविक ही है। बाद में जब पुस्तक प्रकाशित हुयी, तो देखा कि ये सब तो माँ की ही लीला है ! जिससे मार्ग में कोई असुविधा न हो, इसलिये सब कुछ व्यवस्था करके रखी थी।

प्रश्न – क्या बाद में उस व्यक्ति से आपकी भेट हुई थी?

महाराज – नहीं, लेकिन सुना हूँ कि वह वहाँ का जमींदार है।

९-६-१९६०

प्रश्न – महाराजजी, कहीं जाने के लिये शीघ्रता होने से क्या ठाकुर जी की पूजा पहले या बाद में की जा सकती है?

महाराज – नहीं, यदि ठाकुरजी की आत्म-भाव से पूजा की जाय, तो पूजा पहले या बाद में नहीं की जा सकती। ठीक समय पर नित्य पूजा करनी होगी। सबको कहीं एक साथ जाने की आवश्यकता होने पर भी, उस समय पुजारी को दूसरा कोई आवश्यक कार्य नहीं है।

किसी एक भक्त के घर में साधुओं के लिये निमंत्रण था, बहुत से साधु गये हुए हैं।

महाराज – देखो, गृहस्थ के घर में संन्यासी का निमंत्रण खाने जैसा खराब कुछ नहीं है। क्या भागवत का

वह श्लोक याद है? जैसे स्त्री-संग को त्याग करोगे, वैसे ही स्त्री-संग करनेवाले का भी त्याग करोगे। गृहस्थ के घर में जाने से उन लोगों के साथ बातचीत करनी पड़ती है, मिलना-जुलना पड़ता है। तुम लोग खाकर आये हो, पढ़कर आये हो और देखकर आये हो। तुम लोग विद्वान एवं बुद्धिमान हो। तुम लोगों में खाने और मान-सम्मान के लिये दरिद्रता न रहे। तुम लोग 'जीवन-मुक्ति-विवेक' तथा 'विवेक-चूड़ामणि' को पढ़कर साधु जीवन का निर्माण करो।

मेरे साथ दो लड़कों का परिचय था। एक लड़के की आँखें देखकर मैं चौंक गया – मानो टार्च-लाईट है। मैं उसे छाता में ले जाकर स्टेशन पहुँचा दिया। वह बड़ा अच्छा कर्मठ व्यक्ति होगा। दूसरे लड़के की, जैसी बुद्धि थी, वैसा ही शरीर था। क्या तेज था ! साधु जैसे लक्षण थे। किन्तु उसे सम्मान नहीं मिला। इसलिये वह कर्म में ही मतवाला हो गया है। उसका इतना कर्म क्षय हो जाने से ही ठीक हो जायेगा। साधु समाज में जो लोग आते हैं, उनमें से अधिकांश में वैसी कोई आध्यात्मिक स्पृहा Spiritual hankering नहीं है। जो लोग महन्त होते हैं, उनमें कुछ देने जैसी कोई क्षमता नहीं है। वे लोग कुछ भी नहीं जानते कि साधु, संन्यासी और आश्रम क्या है? बतायेंगे क्या ! चार आश्रमों के सम्बन्ध में कोई धारणा ही नहीं है। अधिकांश लोग चाहते हैं कि कर्मी (साधु-ब्रह्मचारी) केवल कार्य करें और कार्य करते-करते वे लोग कूली-मजदूर बन जायँ। न उनके कार्यों की ओर ध्यान देते हैं, न उनके ध्यान की ओर देखते हैं, न उनके स्वास्थ्य का ख्याल रखते हैं और न ही उनके भोजन-आवास को देखते हैं। क्या इससे कोई साधु-सम्प्रदाय टिकता है?

१०-६-१९६०

एक व्यक्ति ने बचपन से महाराज जी का संग किया था। अभी वह स्कूल में शिक्षक है, किन्तु वह छात्रों को पीटता है।

महाराज – देखो, आदर्शवाद (Idealism) बहुत कम लोगों के मस्तिष्क में घुसता है, अल्प लोग ही समझ पाते हैं। यह कार्य निन्दनीय है, इसे नहीं समझते हैं। अभी उसकी प्राण शक्ति बढ़ रही है, वह असुर-भाव में लिप्त होने को विवश है। एक लड़का अपनी जेब में कलम रखता है। उसकी वस्तु उसके पॉकेट में है, यह सोचकर वह बहुत प्रसन्न हो रहा है। इस नव-यौवन में किसी को हृदय से प्रेम करने की इच्छा होती है। स्कूल क्या है? किस प्रकार से लड़के को अकेले बुलाकर समझा दिया जाय, यह सब वे लोग सोचना ही नहीं चाहते हैं। कई बार तो चुपके से बुलाकर कहना पड़ता है – अरे ! तुमने ऐसा कार्य कर दिया ! देखो तो, इससे हमलोगों का मुहँ काला हो गया। इस प्रकार समझाने से कार्य होता है। असली बात क्या है, जानते हो – अपनी क्षमता है, उस क्षमता को दिखाना हुआ। लड़कों को बिना मारे-पीटे शिक्षा देने में बहुत सोचना पड़ता है, कैसे लड़के को सुधारा जायेगा, उस पर विचार करना पड़ता है। वास्तविक बात है कि ये लोग मस्तिष्क लगाना नहीं चाहते। Criminal Tendency – अपराधी प्रवृत्तिवाले लड़कों के लिये, तो borstal School – सुधारशाला है। देखो, हम लोगों के विद्यालय खोलने का उद्देश्य है, स्वामीजी की वह बात है न – "मनुष्य में पहले से ही दिव्यता विद्यमान है। यह देखना है कि इससे लड़के की क्या उन्नति होती है। मेरा अधिकार कैसे बना रहेगा, उसे नहीं देखना है। ईश्वर-भाव से सेवा करना है। स्वामीजी की वाणी क्या याद नहीं है – शिक्षा पूर्णता की अभिव्यक्ति है, जो पहले से ही मनुष्य में विद्यमान है।" सुनो, तुम लोग रामकृष्ण मिशन में इसकी रक्षा करने के लिये नहीं आये हो, इसे सुधारने के लिये नहीं आये हो, यहाँ तक कि इसका गौरव बढ़ाने के लिये भी नहीं आये हो। तुम लोगों का उद्देश्य शरीर, मन और बुद्धि के पार जाना है। किन्तु इसकी एक टीका – व्याख्या आवश्यक है। तुम्हारे ज्ञानी होने से तुम्हारे प्रत्येक कार्य से संघ का गौरव बढ़ेगा। परन्तु वह by product उपफल होगा, गौण रूप से होगा। स्वामी विशुद्धानन्द जी के कारण रामकृष्ण मिशन का गौरव कम नहीं बढ़ा।

कोई विषय सत्य है या असत्य - यह जानने के लिए उसकी एकमात्र परीक्षा यही है, वह तुम्हें शारीरिक, मानसिक या आध्यात्मिक रूप से दुर्बल कर रहा है या नहीं, यदि कर रहा है तो उसका विषवत् त्याग कर दो, उसमें प्राण नहीं, वह कभी भी सत्य नहीं हो सकता । सत्य बलप्रद है, सत्य ही पवित्रता प्रदान करने वाला है, सत्य ही ज्ञानस्वरूप है ।

- स्वामी विवेकानन्द

अस्पृश्यता का रोग

स्वामी आत्मानन्द

(रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.) के संस्थापक ब्रह्मलीन श्रीमत् स्वामी आत्मानन्द जी महाराज ने आकाशवाणी हेतु सामयिक विषयों पर विचारोत्तेजक वार्ताएँ लिखी थीं, जो आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों द्वारा प्रसारित होती रही हैं तथा काफी लोकप्रिय भी हुई हैं। इनकी उपयोगिता को देखकर इन्हें आकाशवाणी, रायपुर के सौजन्य से क्रमश: 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

भारत में सबसे बड़ा सामाजिक अपराध यदि कोई है, तो वह है छुआछूत। यह कब से और कैसे शुरू हुई, यह पता लगाना कठिन है। पर लगता है कई शताब्दियों से छुआछूत की यह भावना हमारी समाज-देह में घुसी हुई है और हमें सतत खोखला बनाने की दिशा में कार्यशील है। हमारे यहाँ बड़े-बड़े चिन्तक और मनीषी हुए, जिन्होंने हमारी इस बुराई को दूर करने का आजीवन प्रयत्न किया, पर यह हमारा दुर्भाग्य है कि अब भी यह बुराई दूर नहीं हुई। इसका कारण यह लगता है कि भले ही कतिपय उच्चाशय महात्माओं ने इस 'सामाजिक कोढ़' को नष्ट करने का बीड़ा उठाया, पर हम संगठित रूप से इसके उन्मूलन की दिशा में प्रवृत्त न हो सके। स्वामी विवेकानन्द ने इस छुआछूत को 'मानसिक रोग' की संज्ञा दी है। यह विडम्बना है कि एक ओर से तो हम ईश्वर के सर्वव्यापित्व के गीत गाते हैं – यह कहते हैं कि वह आत्मतत्त्व सबके भीतर विद्यमान है, और दूसरी ओर हम जन्म के आधार पर जाति-पाँति का भेद करते हुए, विशेषाधिकार की अपेक्षा रखते हैं। छुआछूत की भावना के पीछे विशेषाधिकार का भाव छिपा रहता है। अतएव विशेषाधिकार की भावना को समूल नष्ट करना होगा।

यह दलील दी जाती है कि छुआछूत और भेदभाव तो उन जातियों में भी विद्यमान है, जिनको भारत में निम्न माना जाता रहा है। इसका उत्तर यह है कि यह उन निम्न मानी जाने वाली जातियों को तथाकथित उच्च जातियों की देन है। ऊपर के लोग जैसा करते हैं, नीचे के लोग भी उसका अनुकरण करते हैं। गीता में श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं –

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनाः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ।।

- अर्थात् "श्रेष्ठ जन जैसा आचरण करते हैं, अन्य जन भी वैसा ही करते हैं। वे जो प्रमाण कर जाते हैं, लोग भी उसी का अनुवर्तन करते हैं।" अत: यदि नीची मानी जानेवाली जातियों में परस्पर के लिए छुआछूत का भाव है, तो उसका दोष ऊँची मानी जाने वाली जातियों को ही है। छुआछूत का यह जहर तथाकथित उच्च वर्ण के लोगों के द्वारा ही समाज-देह में फैलाया गया है। कहावत है कि नाग के काटे का विष तभी दूर हो सकता है, जब वही नाग उस काटी हुई जगह में मुँह रखकर अपने दिये विष को चूस ले। अत: यह उच्च वर्ण का कर्त्तव्य है कि अपने छुआछूत के दिये हुए विष को वे स्वयं चूसें और समाज-देह को स्वस्थता प्रदान करें।

हमने अपने संविधान में छुआछूत को कानूनी अपराध माना है। पर मात्र कानून के बल पर किसी अपराध या अशुभ को दूर नहीं किया जा सकता। जब तक हमारा हृदय अपराध को अपराध मानने के लिए तैयार नहीं है, तब तक अपराध को नष्ट नहीं किया जा सकता। यदि हम बुद्धिजीवी हैं, तो हमें स्वीकार करना होगा कि जन्म के आधार पर मनुष्य-मनुष्य में अन्तर करना बुद्धि की तौहीनी है। यदि हम अध्यात्मवादी हैं, तो मनुष्य-मनुष्य में भेद करना अध्यात्म के ही सिद्धान्तों को झुठलाना है। यदि हम ईश्वर को मानते हैं और यह भी स्वीकार करते हैं कि वह न्यायी है, तो मानव-मानव में जन्म के आधार पर भेद करना ईश्वर को अन्यायी सिद्ध करेगा। वास्तव में मनुष्य जन्म के आधार पर बड़ा या छोटा नहीं होता, वह तो अपने स्वभाव, अपने गुणों और कर्मों के आधार पर ही उच्चता या लघुता प्राप्त करता है। यदि भेद का आधार जन्म को माना जाए, तो विशेषाधिकार का भाव पैदा होता है, जो हमारे पतन का कारण रहा है। भेद का आधार तो वस्तुत: हमारा गुण और कर्म है। इसे समझ लेने पर पुरुषार्थ की भावना विकसित होगी और विशेषाधिकार का भाव खण्डित होगा।

स्वामी विवेकानन्द छुआछूत को एक भयानक खाई के रूप में देखते हैं, जिसमें भारतीय समाज गिर पड़ा है। वे हमें बचाने के लिए हमारा आह्वान करते हुए कहते हैं – "तुम अपना जीवन 'मत छुओवाद' के इस घोर अधर्म में मत खो बैठना। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' अर्थात् 'सभी प्राणियों को स्वयं अपनी आत्मा के समान देखो' – क्या यह उपदेश केवल पुस्तकों के भीतर ही रह जायेगा? जो भूखे के मुँह में एक टुकड़ा रोटी नहीं दे सकते, वे मुक्ति कैसे देंगे? जो दूसरों के केवल श्वास से ही अपवित्र हो जाते हैं, वे दूसरों को पवित्र कैसे बनाएँगे? 'मत छुओवाद' एक प्रकार का मानसिक रोग है। सावधान! विकास ही जीवन है और संकीर्णता ही मृत्यु; प्रेम ही विकास है और स्वार्थपरता ही संकीर्णता। अत: प्रेम ही जीवन का एकमात्र नियम है।" और यह प्रेम ही छुआछूत के सामाजिक कोढ़ से हमारी रक्षा कर सकता है। ▲▲▲

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कथा-कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन 'विवेक-ज्योति के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

३७. अहिंसावादी की चोर पर दया

एक बार एक अहिंसावादी के घर में चोर घुसा। घर के लड़के उसे पकड़कर उसकी खूब पिटाई करने लगे। शोर-गुल सुनकर घर का मालिक दुमंजिले के छज्जे में आया और सब कुछ जान लेने के बाद वहीं से चिल्लाकर बोला, "बच्चो, उसे मत मारो, मत मारो, अहिंसा परमो धर्म: – अहिंसा ही सर्वोच्च धर्म है।" उन छोटे अहिंसकों ने मारना बन्द करके मालिक से पूछा, "तो फिर चोर का क्या किया जाय?"

मालिक ने आज्ञा दी, "इसे थैले में भरकर पानी में डाल दो!" इस करुणापूर्ण निर्णय पर चोर गद्गद् होकर हाथ जोड़कर कृतज्ञता प्रकट करते हुए बोला, "अहा, मालिक की कैसी दया है!" (८/१७४)

३८. सोलन तथा क्रीसस की कथा

क्या तुम्हें (महात्मा) सोलन और राजा क्रीसस की कथा ज्ञात है? राजा ने महात्मा से कहा, "देखिये, यह एशिया माइनर बड़ा सुखमय स्थान है।"

सन्त ने पूछा, "कौन है सबसे सुखी आदमी? मुझे तो ऐसा कोई भी नहीं दिखा, जो बहुत खुश हो।"

क्रीसस ने कहा, "क्या बकवास है! मैं ही तो दुनिया का सबसे सुखी आदमी हूँ।"

सन्त ने उत्तर दिया, "महाराज, निष्कर्ष निकालने में जल्दबाजी मत कीजिये। अपने जीवन का अन्त आने तक प्रतीक्षा कीजिये।" इतना कहकर वे चले गये।

कालान्तर में फारसी लोगों ने उस राजा पर विजय प्राप्त कर ली और उन्हें जीवित जला देने का आदेश दिया। जब बेचारे क्रीसस ने अपने लिये सजायी हुई चिता देखी, तो वे जोर की आवाज में बोल उठे, "सोलन! सोलन!"

फारस के सम्राट् ने उनसे पूछा कि वे किसको पुकार रहे हैं, तो उन्होंने अपनी सारी आप-बीती कह सुनायी। सुनकर सम्राट् का हृदय द्रवित हो गया और उन्होंने क्रीसस को प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया। (३/१०३)

३९. अपने आप में विश्वास करो

प्रत्येक राष्ट्र के इतिहास में तुम देखोगे कि जिन व्यक्तियों ने स्वयं पर विश्वास किया, वे ही महान तथा सबल हो सके थे। यहाँ, इस भारत में एक अंग्रेज आया था, वह एक साधारण-सा क्लर्क था, निर्धनता या अन्य कारणों से उसने दो बार अपने सिर में गोली मारकर आत्महत्या करने की चेष्टा की और जब वह उसमें असफल हुआ, तो उसे विश्वास हो गया कि वह बड़े-बड़े काम करने के लिए पैदा हुआ है – वही लॉर्ड क्लाइव इस साम्राज्य का संस्थापक बन गया! यदि वह पादरियों पर विश्वास करके घुटने टेककर 'हे प्रभो, मैं दुर्बल हूँ, दीन हूँ' – कहता रहता, तो जानते हो उसे कहाँ जगह मिलती? नि:सन्देह उसे पागलखाने में रहना पड़ता। इस तरह की कुशिक्षा ने तुम्हें पागल बना डाला है। मैंने सारे संसार में देखा है, दुर्बलता का पोषक यह दीनता का उपदेश सम्पूर्ण मावन-जाति का विनाश कर रहा है। यदि हमारे बच्चों का इसी तरह की शिक्षा के साथ पालन किया जाता है, तो उनके अर्द्धविक्षिप्त हो जाने में भला क्या आश्चर्य है!

यह अद्वैतवाद के व्यावहारिक पक्ष की शिक्षा है। अत: स्वयं पर विश्वास रखो और यदि तुम्हें भौतिक ऐश्वर्य की कामना हो, तो इसे कार्य में लगाओ, धन तुम्हें प्राप्त हो जायेगा। यदि विद्वान् बनने की इच्छा है, तो इसका बौद्धिक क्षेत्र में उपयोग करो, तुम महा-मनीषी हो जाओगे और यदि तुम मुक्ति पाना चाहते हो, तो तुम इसका अध्यात्म के क्षेत्र में उपयोग करो और तुम मुक्ति पा लोगे और निर्वाण-रूपी परम आनन्द में प्रवेश करोगे। (५/३१७)

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्योहार

२	गाँधी-जयन्ती
३	दशहरा
६	ईद
२३	कालीपूजा
२३	दीपावली
२५	भाईदूज
५,१९	एकादशी

विभिन्न रूपों में श्रीमाँ

आशुतोष मित्र

१९४४ ई. के नवम्बर में प्रकाशित लेखक के 'श्रीमाँ' नामक पुस्तक के प्रथम तीन अध्याय हम २००६ के अंकों में प्रकाशित कर चुके हैं। बँगला ग्रन्थ 'श्रीश्री मायेर पदप्रान्ते' के खण्ड २ से इस अंश का अनुवाद किया है इलाहाबाद की श्रीमती मधूलिका श्रीवास्तव ने। इसका सम्पादन 'विवेक-ज्योति के भूतपूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

(५८) दिन के दस बजे होंगे। भक्तश्रेष्ठ नाग महाशय माँ का दर्शन करने आये हैं। उन्हें देखकर माँ को सूचित करने पर वे हाथ में प्रसाद लिये सीढ़ी तक आकर भक्त की प्रतीक्षा करने लगीं। इधर नाग महाशय 'मायेर बाड़ी' के मुख्य द्वार से 'महामाई-महामाई' कहते हुए साष्टांग होकर अग्रसर होने लगे, सारी सीढ़ियाँ इसी प्रकार चढ़े। ऊपर पहुँचने पर माँ के 'आओ बेटा, आओ' कहने पर उन्होंने 'महामाई-महामाई' कहकर सिर ठोकते हुए प्रणाम किया। माँ ने छत के जीने की पहली सीढ़ी पर बैठकर उनसे उठने को कहा, तो वे घुटनों के बल पड़ गये, उनका सर्वांग काँप रहा था, दोनों नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहकर दोनों गालों से होकर नीचे गिर रही थी। माँ ने कहा, "आओ, ठाकुर का प्रसाद लो।" वे बोले, "महामाई का प्रसाद !" माँ ने जब अपनी जिह्वा से छुलाकर उसे प्रसाद कर दिया, तभी उन्होंने मुँह खोला। माँ उन्हें थोड़ा-थोड़ा खिलाने लगीं और वे बालक की भाँति खाने लगे। दोनों गाल आँसुओं से भीगते रहे। प्रसाद खिलाने के बाद माँ उनके मुख में पानी का एक-एक घूँट देने लगीं और वे पीने लगे। इस प्रकार प्रसाद खिलाने के बाद माँ हाथ धोकर आयीं और अपने दाहिने हाथ से उनके मस्तक का स्पर्श करके आशीष दिया, तो वे 'महामाई-महामाई' कहते पीछे हटते हुए नीचे उतर गये। जब तक वे दिखाई देते रहे, तब तक माँ अपलक नेत्रों से उन्हें देखती रहीं। यह एक स्वर्गीय दृश्य था।

(५९) खंजनी बजाते और मुख से कुछ गुनगुनाते हुए एक पगली ऊपर चली गयी। शरत् महाराज ने हम लोगों से कहा, "अरे देख, कोई पगली ऊपर चली गयी है।" ऊपर जाकर देखा – माँ ने उसका 'आओ बेटी', कहकर स्वागत किया और वह मन्दिर के बाहर खड़ी होकर गाने लगी। पगली एक फटा हुआ वस्त्र पहने थी, उसके बाल इतने रूखे थे कि उनसे जूएँ गिर रही थी। पगली ने माँ को प्रणाम नहीं किया, कुछ बोली भी नहीं, केवल गाती रही। अपने आप में डूबी, कभी घुटने के बल बैठकर तो कभी खड़ी होकर गाती रही। कभी हाथ जोड़कर, तो कभी बाँया हाथ फैलाकर गाती रही। जब तक गाती रही, तब तक उसकी आँखें बिल्कुल भी नहीं खुलीं। पगली बड़ी बदसूरत और गन्दी थी, पर उसका कण्ठस्वर अति मधुर था। उसी किन्नर कण्ठ से उसने कीर्तन गाया –

तुम लोग मुझे सँवार दो,
तुम लोग मेरा शृंगार कर दो ।।
मैं अपने प्राणप्रिय कान्हा के लिये
योगिनी का वेश धारण करूँगी ।।
मैं शरीर पर गैरिक वसन धारण कर
शंख के कुण्डल पहने,
योगिनी के वेश में, जाऊँगी उस देश में
जहाँ निष्ठुर हरि का निवास है ।।
यदि गोकुलचन्द्र ब्रज में नहीं आया,
तो मैं अपने इस रूप-यौवन और
रत्नों को काँच के समान समझूँगी ।।
(तुम लोग मुझे सँवार दो,
तुम लोग मेरा शृंगार कर दो ।।)
मैं योगिनी बनकर मथुरा नगर के
घर-घर में जाकर उसे ढूँढूगी ।
यदि कोई उसे रोके, तो मैं प्राणत्याग दूँगी
उसी को नारी-वध का दोष लगेगा ।।
(अब मैं और उसके बिना रह नहीं पा रही हूँ ।)

गाते हुए पगली चली गयी। उसे फटे वस्त्रों में देखकर माँ ने उसे एक नया वस्त्र दिया, लेकिन वह पड़ा ही रहा। खाने को भी कहा, पर वह बिना खाये चली गयी। माँ ने कहा, "प्रबल वैराग्य है, वह न खायेगी, न लेगी, शरीर त्याग देगी।"

(६०) कालीघाट में भद्रकाली का दर्शन करने के बाद माँ पैदल नकुलेश्वर की ओर जा रही थीं। मार्ग में गेरुआ-धारिणी, त्रिशूल-हस्ता भैरवी उनका रास्ता रोककर खड़ी हो गयीं। कुछ देर माँ के मुँह की ओर निहारने के बाद भैरवी

गाने लगी। माँ चित्रलिखी-सी खड़ी रहीं। भैरवी का भजन सुनने के लिये रास्ते के भिखारियों और यात्रियों आदि की भीड़ लग गयी। वे गा रही थीं –

ओ पार्वती, बता, तू पराये घर में किस प्रकार रही
कितने लोग कितना कुछ कहते हैं,
सुन-सुनकर मेरे प्राण निकलने लगते हैं।।
माँ के प्राणों को भला धैर्य कैसे मिले,
क्योंकि सुना है कि जमाई भिक्षा किया करता है !
इस बार जब शिव तुझे लेने आयेंगे,
तो कह दूँगी कि पार्वती घर में नहीं है।।

भजन समाप्त होने पर माँ के संकेत पर भैरवी को पैसे देने को तैयार होने पर उसने मना करते हुए कहा, "जिससे जो प्राप्य हो, उससे वही लेना चाहिए, माँ। तुमसे जो लेना है, वह मैं स्वयं ही ले लूँगी। तू जहाँ जा रही है, जा।" माँ आगे बढ़ीं। मैंने देखा कि रास्ते में जहाँ माँ के चरणों की धूलि पड़ी थी, भैरवी ने उसे उठाकर अपने सिर पर धारण किया और चली गयी।

नकुलेश्वर पहुँचकर माँ दर्शन करने नहीं गयीं। नलिनी, राधू, छोटी मामी और गोलाप-माँ को दर्शनार्थ जाने को कहकर वे स्वयं एक चबूतरे पर बैठी रहीं। अपने आप में डूबी बैठी रहीं। गोलाप-माँ आदि ने लौटकर जब उन्हें कई बार पुकारा, तब वे उठीं और अनमने भाव में गाड़ी में बैठ गयीं। सारे रास्ते वे कुछ नहीं बोलीं। घर लौटकर उन्होंने पूछा, "वह भैरवी कौन थी?" मैं बोला, "लगता है गिरीशबाबू के थियेटर की कोई रही होगी, इस समय ऐसी हो गयी है।" माँ विशेष कुछ नहीं बोलीं, 'ओह !' मात्र कहकर चुप हो गयीं। (समाप्त)

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरद् चन्द्र पेंढारकर, नागपुर

२७३. अति का अन्त बड़ा दुखदायी

राव चूड़ा अपनी नवविवाहिता सुन्दर पत्नी पर बेहद आसक्त था। नागोर-विजय के बाद तो वह उसके इशारों पर चलने लगा। रानी निष्ठुर व कंजूस थी। उसने पहले गृहखर्च में मितव्ययिता बरतना शुरू किया। बाद में वह राजा के कार्यों में हस्तक्षेप करने लगी। मंत्रियों को जब पता चला, तो उन्होंने राव चूड़ा से रानी की शिकायत की। राव ने उनसे साफ-साफ कहा, "रानी जो भी कर रही है, राज्य की भलाई के लिये कर रही है। उसके खिलाफ कुछ भी बोलना मुझे बर्दाश्त न होगा।" रानी को जब मालूम हुआ कि घोड़ों को घी बहुत खिलाया जाता है, तो उसने उनकी खुराक की मात्रा क्रमश: कम करना शुरू किया।

एक दिन राव को अश्वशाला के घोड़े दुर्बल दिखाई दिये, तो उसने रिसालदार से कारण पूछा। रिसालदार ने बताया कि रानी के आदेशों के मुताबिक उन्हें घी बहुत ही कम दिया जाता है। यह सुनकर राजा को क्रोध आ गया। उन्होंने रानी को डाँट दिया। रानी को सहन न हुआ, वे राव से झगड़ने लगीं। तब राव ने कहा –

"कलह करो मत कामिणी घोड़ा घी देतां।
आड़ा कदेक आव्सी बाड़े ली बहतां।।"

(घोड़ों को घी देने के बारे में हे कामिनी कलह मत करो। युद्ध के समय यही घोड़े बहुत काम आते हैं।)

रानी ने काव्य में उत्तर दिया –

आकवटू कै पवन भरव तुरियां आगल-जाए।
हूँ तव पूछूं सायबा हिरण किसा घी खाए।।

(हिरन आक चरते हैं और हवा का सेवन करते हैं। लेकिन जब दौड़ते हैं, तो घोड़ों से आगे ही रहते हैं। मैं पूछती हूँ कि क्या हिरनों को घी दिया जाता है।)

राव से कुछ कहते न बना। तब रानी ने कहा, "मैं व्यर्थ खर्च नहीं होने दूँगी।" राव रानी पर नियंत्रण न रख सका। सेना के खर्च में दिन-प्रतिदिन कटौती होने और मंत्रियों के कामों में रानी के हस्तक्षेप से असंतोष बढ़ता गया। कुछ मंत्री शत्रु से जा मिले। एक दिन मौका देख शत्रु राजा ने हमला कर दिया। घोड़े दुर्बल होने से साथ न दे सके। राजा युद्ध में पराजित हो गये, मारे गये।

मितव्ययिता अच्छी है, किन्तु विवेक व बुद्धि के आधार पर खर्च कम करना पड़ता है। किसी भी बात में अतिशयता हानिकर होती है। जो न स्वयं भोगते हैं और दूसरों के हक की रोटी छीनते हैं, ऐसे कंजूस व्यक्तियों का धन बाद में नष्ट हो जाता है। मितव्ययिता उतनी ही अच्छी, जितनी जरूरी होती है। ○○○

कर्मयोग – एक चिन्तन (३५)

स्वामी सत्यरूपानन्द,

सचिव, रामकृष्ण विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

(प्रस्तुत व्याख्यान स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मिशन आश्रम, राजकोट, गुजरात में दिया था। इसका टेप से अनुलिखन पूना की सीमा माने और सम्पादन स्वामी प्रपत्यानन्द जी ने किया है।)

जैसे बंदरिया अपना बच्चा पेट से चिपकाकर घूमती है। ऐसा सुना है कि बच्चा जब मर जाता है, तब भी बंदरिया उसे छोड़ती नहीं है। जब तक कि वह सड़कर गिर न जाय। इसको कहते हैं – सम्मोहन। सम्मोहात्स्मृति-विभ्रमः – सम्मोह होने से स्मृतिभ्रंश हो जाती है। स्मृति का अर्थ केवल याद रखना नहीं है। मेरे लिये क्या उचित है, क्या अनुचित है, इसको भी स्मृति कहते हैं। काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह और सम्मोह से स्मृति विभ्रमित हो जाती है। जब स्मृति भ्रमित हो जाती है, तब क्या भला-बुरा है, यह ज्ञान लुप्त हो जाता है। फिर भाई-भाई आपस में लड़ते हैं, एक दूसरे की हत्या भी कर देते हैं। जितने भी अशुभ कर्म आप पढ़ते-सुनते-देखते हैं, वे सभी स्मृति-विभ्रम के कारण होते हैं। जब स्मृति संतुलित रहती है, तो व्यक्ति कभी-भी सीमाओं को पार नहीं करता। इसका एक दृष्टान्त देखें।

वाल्मीकि रामायण में हम पढ़ते हैं। लक्ष्मणजी परशुरामजी से बहुत अनुचित बहस कर रहे थे। भगवान राम ने उनको केवल आँखें दिखायीं, तब वे चुप हो गये और गुरुजी के पास जाकर बैठ गये। फिर उन्होंने कुछ धृष्टता नहीं की।

स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशः – स्मृतिविभ्रम होने से बुद्धि का नाश हो जाता है। मनुष्य की बुद्धि का नाश हो जाता है, माने कोई खोपड़ी नहीं फोड़ देता है। उसकी सोचने-समझने की क्षमता चली जाती है। तामसिकता इतनी आवृत्त कर देती है कि वह सत-असत् का विवेक नहीं कर पाता है। यह शत-प्रतिशत मनोवैज्ञानिक सत्य है। हमारा यह स्वभाव है। क्योंकि हम मनुष्य हैं। मनोवैज्ञानिकों ने मानव व्यक्तित्व के दो भाग – बाह्य व्यक्तित्व और आन्तरिक व्यक्तित्व बताये हैं। ये सभी कार्य बहिर्मुखी व्यक्तित्व के द्वारा ही होते हैं। बुद्धिनाश होते ही व्यक्ति बहिर्मुखी हो जाता है। भीतर में उसको कुछ दिखता ही नहीं है। तब क्या होता है?

भगवान कहते हैं – बुद्धिनाशात् प्रणश्यति – बुद्धि के नाश होने से व्यक्ति का पतन हो जाता है, वह नष्ट हो जाता है। यह प्रक्रिया है काम और क्रोध आदि के उद्भव और उसके कुपरिणाम की। इसका अनुभव भी सबको होता है। ७०-७२ साल से आम खा रहे हैं – क्या हमारी आम खाने की इच्छा तृप्त हो गयी है? अगर यह मुझे वैरी न लगे, तो मैं इसके छोड़ने के विषय में कभी सोचूँगा ही नहीं। हमें यह बात ठीक से समझ लेनी चाहिये कि हम किसी भी वासना का भोग करके तृप्त नहीं हो सकते। जीवन में हम कामनाओं से तृप्त होना चाहते हैं। प्रज्वलित अग्नि में जितना ही हम घी डालेंगे, उतनी ही अग्नि बढ़ती जायेगी। जो वासना जितनी अधिक प्रबल है, उसका हम उतना ही अधिक भोग करना चाहते हैं। उसका परिणाम यह होता है कि हम मृत्यु पर्यन्त उसके दास बने रहते हैं। इसके दासता के कारण हम **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्** – बार-बार जन्म-मरण के चक्र में घूमते रहते हैं। जबकि नारद भक्तिसूत्र में नारदजी कहते हैं कि भगवान को पाने के लिये मनुष्य के मन में दूसरी कोई भी वासना न रहे – **सा न कामयमाना** – भक्त के मन में भगवान की भक्ति के अतिरिक्त दूसरी कोई भी कामना नहीं होती।

भगवान ने सोचा कि शायद केवल पेटू आदि बातें अर्जुन को नहीं जमी। अर्जुन पाप-पुण्य पर बहुत विश्वास करते थे। उन्होंने स्वर्ग की बात बहुत की है। भगवान ने बताया कि यह काम-क्रोध महापेटू – बहुत खाने वाला है, महापापी – बहुत बड़ा पापी है। हमें इन पर संयम करना होगा। हम इन पर संयम नहीं करते और इन दोनों को हमने पालकर रखा है। ये भेड़ियों की तरह हैं, कुत्ते की तरह नहीं हैं। भेड़ियों को आपने जन्मभर पालकर रखा, उसको खिलाया-पिलाया, कभी हड़ताल हो गयी, कुछ गड़बड़ हो गयी, उसको भोजन नहीं मिला, तो वह भेड़िया मालिक को चीरकर खा जायेगा। कुत्ता नहीं खाता है। हमारे जीवन में ये वासनायें भेड़ियों के समान हैं। वे बहुत खाते हैं। एनम् इह वैरिणम् विद्धि' – साधक को इन्हें शत्रु समझना चाहिए। इनसे सावधान रहना चाहिये।

मनुष्य को चिन्तन करना चाहिये। भगवान शंकराचार्य जी कहते हैं – **शुष्के नीरे कः कासारः। वयसि गते कः कामविकारः।।** ऐसी कामनायें जो हमें परमार्थ पथ से

हटाती हैं, वे हमारी शत्रु हैं । वे हमारे सत्य स्वरूप को स्पष्ट नहीं देखने देतीं । वह ज्ञान कैसे ढँका है? भगवान उदाहरण के द्वारा समझा रहे हैं –

धूमेनाव्रियते वह्निर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।३-३८।।

जैसे धूएँ से अग्नि ढँक जाती है और मैल से दर्पण ढँक जाता है, उस दर्पण में प्रतिबिम्ब नहीं दिखता है, जैसे जेर से गर्भ ढँका रहता है, माँ जब गर्भवती रहती है, तब उसका गर्भाशय शिशु को ढँके रहता है, उसी प्रकार काम और क्रोध के द्वारा यह ज्ञान ढँका रहता है ।

मनुष्य भूल जाता है कि वह मनुष्य है, नित्य-मुक्त-शुद्ध-चैतन्य आत्मा है । मनुष्य होने के कारण व्यक्ति को पशु जैसा व्यवहार नहीं करना चाहिए । मनुष्य होने के नाते मुझे सच्चरित्र होना चाहिये । गरीब-दु:खी की सहायता करनी चाहिए । हमें सद्ज्ञान होना चाहिये, असत् ज्ञान नहीं होना चाहिये । ये काम और क्रोध असत् के ही रूप हैं । ये केवल विवेक के प्रकाश से ही मिट सकते हैं । इन्हें मिटाने का दूसरा कोई उपाय नहीं हैं ।

इन काम आदि प्रबल शत्रुओं से लड़ने के लिये हम दृढ़ संकल्प लें कि भले ही हमें थोड़ा दु:ख हो, हम घायल हों, किन्तु इनसे लड़ेगें और इनसे जीतकर विजयी होंगे ।

आइये, हम थोड़ा कल्पना का आश्रय लें । तुरीयानन्दजी महाराज कहते हैं – आज की कल्पना कल का सत्य होगा । हम कल्पना करें कि भगवान श्रीकृष्ण रथ में बैठे हैं । उस रथ में चार घोड़े जुते हुये हैं । भगवान एक हाथ से घोड़ों की लगाम जोर से खींचे हुये हैं कि कहीं घोड़े बहक न जायँ । 'युद्ध नहीं करूँगा' ऐसा कहकर अर्जुन रथ के पीछे बैठे हुये हैं । भगवान के हाथ में चाबुक है । घोड़ों की तरफ न देख कर अर्जुन की तरफ देख रहे हैं । अर्जुन तो उनके सखा थे, फिर बहनोई थे, उनसे घनिष्ठ सम्बन्ध था । वे अर्जुन से कह रहे हैं कि यह काम ज्ञानियों का नित्य वैरी है, शत्रु है –

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।३-३९।।

हे अर्जुन, दुष्पुरणीय इस अग्नि के समान, ज्ञानियों का नित्य वैरी, इस काम के द्वारा मनुष्य का ज्ञान ढँका हुआ है।

शास्त्रों को शब्दश: और अक्षरश: पढ़ना चाहिए । यहाँ ज्ञानी विशेषण है । जिस व्यक्ति को ज्ञान हो, उसे यह विशेषण लगाया जाता है । यह काम ज्ञानियों का सदैव वैरी है । तो क्या यह संसारियों का मित्र है? हाँ, यह संसारियों का मित्र बन जाता है । मान लो अगर ऐसा कोई कहे कि देखो, जूआ खेलने का हम तुमको एक अच्छा रास्ता बताते हैं । जूआ खेलने में हम तुम्हें शकुनि के समान कपट सिखा देते हैं, इससे तुम्हारा शत्रु हारता जायेगा और तुम जीतते जाओगे । ये तामसिक वृत्तियाँ उनका मित्र बन जाती हैं कि जो इच्छा हो करो । मनुष्य की परीक्षा इसी में होती है कि जब मनुष्य किसी एक अपरिचित स्थान में जाता है, जहाँ उसे कोई न जानता हो, तब उसका मन बताता है कि वह क्या है? वह क्या चाहता है? पैसा बहुत है, सुविधा बहुत है, यहाँ कोई पहचानता नहीं है, जो मर्जी हो वैसा व्यवहार करें, उसके लिये कोई रोक-टोक नहीं है । किन्तु जो ज्ञानी है, वह विचार करता है कि अच्छा, क्या इतना ही जीवन है? जबसे होश आया, तबसे खाते-पीते-कमाते रहे, विवाह हो गया, संतानें हुईं, घर-बार हुआ, किन्तु उपलब्धि क्या हुई? यदि और पीछे गये, तो समझ में आयेगा कि पहले तो हम मातृगर्भ में थे । वहाँ तो शून्य थे । बिन्दु के रूप में थे । शून्य से शुरू किये थे और अभी Balance sheet देखा, तो शून्य के शून्य ही रह गये । ऐसे संसारी जीवन जीनेवाले लोगों के लिये ये काम-क्रोध शत्रु नहीं हैं, पर जिनके मन में यह पीड़ा है, ऐसे लोगों के ये काम और क्रोध शत्रु हैं । सामान्य लोगों को ऐसा होने पर तो वे लाखों रुपये की दवा खाते हैं कि हमारी कामना तीव्र हो जाये । आप-हम उस श्रेणी में नहीं हैं । फिर कहते हैं 'दूष्पूरेणानलेन च' – यह अग्नि के समान दुष्पूरणीय है । भगवान अर्जुन के चेहरे के भाव को देखकर समझ गये । उन्होंने बड़ा सटीक उदाहरण देते हुये कहा कि जैसे अग्नि में इस पूरी पृथ्वी का ईन्धन डाल दें, तो भी अग्नि कभी शान्त नहीं होगी । ईन्धन जब समाप्त हो जायेगा, तभी अग्नि शान्त होगी । अग्नि के समान यह काम अपूर्ण है । कभी पूर्ण होने वाला नहीं है । यह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है ।

अब प्रश्न उठता है कि ये रहते कहाँ हैं? इसका निराकरण भगवान ४० वें श्लोक में करते हैं –

इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ।।३-४०।।

– हे अर्जुन, इन्द्रिय, मन और बुद्धि इस काम के निवास स्थान कहे जाते हैं । यह काम इन मन, बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ही ज्ञान को आच्छादित करके जीवात्मा को विमोहित कर देता है ।

कामना – काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह, मत्सर ये

सभी इन्हीं इन्द्रियों, मन और बुद्धि में ही रहते हैं । अमृतबिन्दु उपनिषद में स्पष्ट कहा गया है - **मन एव मनुष्याणां कारणम् बन्धमोक्षयोः** – मन ही मनुष्य के मुक्ति और बन्धन का कारण है ।

मनो हि द्विविधं प्रोक्तं शुद्धम् अशुद्धमेव च ।
अशुद्धं काम-संकल्पं शुद्धं काम-विवर्जितम् ।।१।।

– मन दो प्रकार का होता है – शुद्ध और अशुद्ध । कामनाशून्य मन शुद्ध होता है और कामनायुक्त मन अशुद्ध होता है ।

इन्द्रिय, मन और बुद्धि इस काम के वास स्थान हैं । यह काम मन-बुद्धि और इन्द्रियों के द्वारा ज्ञान को ढँक देता है और जीवात्मा को मोहित कर देता है । जैसे बिजली के बल्ब को काले कपड़े से ढँक दिया, तो अन्धकार हो जाता है । वैसे ही यह कामना ज्ञान को ढँक देती है । गीता का यह भी एक मूल सूत्र है कि हम केवल देह नहीं है, हमारे देह के भीतर एक आत्मा है, वही हमारा नित्य-स्वरूप है । अज्ञान जीवात्मा को मोहित कर देता है और उसके कारण हम दु:ख पाते हैं, कष्ट पाते हैं ।

इस मोह और दु:ख से बचने का उपाय क्या है? तब भगवान तुरन्त मार्ग बताते हैं –

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ।।३.४१।।

हे अर्जुन, सबसे पहले अपनी इन्द्रियों को वश में करके इस ज्ञान और विज्ञान का नाश करनेवाले, सबसे बड़े पापी इस काम को बलपूर्वक निश्चित रूप से मार डालो ।

भगवान कहते हैं – हे अर्जुन, यदि तुम इस काम-वासना और उसके साथ आने वाले शत्रुओं से बचना चाहते हो, तो सबसे पहले इन्द्रियों के संयम का अभ्यास करो । इन्द्रियों के संयम के अभ्यास के बिना आध्यात्मिक जीवन सम्भव नहीं है । बहुत बार मन में आता है, किन्तु संयम करें कैसे? शिवाजी महाराज के गुरु के जीवन की एक घटना बहुत ही प्रेरणादायी है । उदाहरणार्थ मैं आप लोगों को सुना रहा हूँ ।

समर्थ रामदास जी शिवाजी महाराज के गुरु थे । वे विवाह मंडप में थे । पंडितों ने विभिन्न मन्त्रों के साथ 'सावधान' शब्द का भी उच्चारण किया । उस समय रामदास केवल १२ वर्ष के थे । 'सावधान' शब्द सुनते ही वे मंडप से भाग खड़े हुए तथा गोदावरी नदी के तट पर रहकर भिक्षा के द्वारा जीवन चलाते हुए बारह वर्ष तक राम-नाम जपते रहे, तब कहीं उनको सिद्धि मिली । उसी प्रकार हमें भी इन्द्रियों को वश में करने के लिये भगवान के नाम का आश्रय लेना पड़ेगा, उनसे प्रार्थना करनी पड़ेगी, उनकी शरण में जाना पड़ेगा ।

इन्द्रियों का संयम किये बिना कोई भी व्यक्ति, कोई महान कार्य नहीं कर सकता । जैसे पानी पर लिखना असम्भव है, वैसे ही बिना इन्द्रियनिग्रह किये उच्च जीवन सम्भव नहीं है । राजयोग में नियम बताते हैं कि पहले अपने इन्द्रियों को वश में करना पड़ेगा ।

भगवान कहते हैं कि ऐसी कामनायें जो परमार्थ मार्ग से हटा रही हैं, उनको बलपूर्वक मार डालो । क्यों? क्योंकि 'ज्ञानविज्ञान-नाशनम्' – ये ज्ञान और विज्ञान दोनों का नाश कर देती हैं । दूध मीठा होता है, यह ज्ञान है, और दूध पीकर स्वास्थ्य लाभ होता है, यह विज्ञान है । ये बैरी, ये पापी वासनायें ज्ञान और विज्ञान दोनों को नष्ट कर देती हैं । इसलिये इसको बलपूर्वक मार डालो ।

कैसे इनका नाश होगा? उसका उपाय क्या है? श्रीकृष्ण कहते हैं –

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ।।३.४२।।

इस स्थूल शरीर से इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं, बलवान हैं । जो जितना सूक्ष्म होता है, वह उतना ही अधिक शक्तिशाली होता है । हमारे स्थूल शरीर से, इन्द्रियाँ बलवान हैं । मन इन्द्रियों से बलवान है । मन से अधिक शक्तिशाली बुद्धि है । क्योंकि बुद्धि से ही मन वश में आता है । इस बुद्धि से परे जो हमारा स्वरूप है, वह हमारी आत्मा है । उस आत्मा को हमें जानना पड़ेगा । भगवान अगले श्लोक में कहते हैं –

एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ।। ३-४३

– हे अर्जुन, इस प्रकार बुद्धि से आत्मा सूक्ष्म, बलवान और श्रेष्ठ है । उस आत्मा को जानकर बुद्धि के द्वारा मन को वश में करके इस दुर्जय कामरूपी शत्रु को मार डालो ।

कर्मयोग-अध्याय के इस अन्तिम श्लोक में भगवान कह रहे हैं कि हे अर्जुन, बुद्धि से परे जो आत्मा है, उसको जानो । मन को वश में करके आत्मा को जान लो । कामरूपी जो शत्रु हैं, उनको मारकर समाप्त कर दो । उस नित्य शाश्वत अपनी आत्मा को जानने के बाद तुम सदा के लिये इस सांसारिक झंझटों से, जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाओगे और अमर आनन्दस्वरूप हो जाओगे । यही मानव जीवन का लक्ष्य है । **(प्रवचन समाप्त)**▲▲▲

भारतीय जीवन-दृष्टि और पुरुषार्थ-चतुष्टय (५)

डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा

(प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

काम पुरुषार्थ

काम पुरुषार्थ साध्य कोटि का पुरुषार्थ है। ब्राह्मणकाल तक यही धर्माचरण का प्रयोजन था। धर्म का लक्षण है 'अभ्युदयनि:श्रेयसहेतु:' अर्थात् जो इस लोक में उन्नति और परलोक में स्वर्गादि भोगों का साधन बने वही धर्म है। कालान्तर में जब उपनिषदों के द्वारा काम के स्थान पर मोक्ष की चरम लक्ष्य के रूप में स्थापना हुई, तो 'नि:श्रेयस' शब्द का अर्थ मोक्ष लिया जाने लगा। फिर भी काम पुरुषार्थ का महत्त्व कम नहीं है। मनुष्य की चेतना का सर्वोच्च विकास भले ही मोक्षरूप हो, व्यवहार की दृष्टि से कामरूप पुरुषार्थ की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

काम का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। काम शब्द का सामान्य अर्थ है कामना या इच्छा। इससे ही जुड़ा हुआ दूसरा अर्थ है कामनाओं या इच्छाओं के विषय भूत पदार्थ। इस तरह कामना और भोग दोनों ही काम शब्द से सूचित होते हैं; उदाहरण के लिये गीता के द्वितीय अध्याय का श्लोक है -

प्रजहाति यदा कामान् सर्वान्पार्थ मनोगतान्।

आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थितप्रज्ञस्तदोच्येत ।।२.५५।।

– यहाँ 'कामान्' शब्द से तात्पर्य है – कामनाएँ। इसी प्रकार द्वितीय अध्याय के अन्य एक श्लोक -

आपूर्यमाणमचलं-प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।

तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ।।२.७०।।

में काम शब्द का तात्पर्य भोग है। इस तरह कामना और उससे विषयरूप पदार्थ या भोग–दोनों ही काम शब्द के अर्थ हैं।

अपने इस अर्थ में काम मनुष्य की प्रत्येक इच्छा और उसकी पूर्तिरूप फल भोग को अपने भीतर समेट लेता है। महाकवि कालिदास काम शब्द का प्रयोग 'प्रेम' के अर्थ में करते हैं। मनुष्य की सर्वसाधारण शारीरिक इच्छाओं से लेकर उसकी असाधारण उदात्त इच्छाएँ और संकल्प भी काम शब्द के अन्तर्गत आ सकते हैं। काम शब्द अपने इस व्यापक अर्थ में कलाओं और साहित्य को भी समेटता है; मनुष्य की सभी इच्छाएँ और उनके प्रयोजन 'काम' की अवधारणा में आ सकते हैं।

जहाँ तक काम पुरुषार्थ का सम्बन्ध है उसका क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित है। सामान्य रूप से काम पुरुषार्थ के अन्तर्गत किसी व्यक्ति के निजी हित और व्यक्तिगत सुख आते हैं। व्यक्तिगत उत्कर्ष और सुख-सन्तुष्टि के लिये सकाम भावना से की जाने वाली चेष्टाएँ और उनके फलस्वरूप प्राप्त होने वाले विषयभोग ही काम पुरुषार्थ का स्वरूप है। धर्म की प्राचीन अवधारणा से काम पुरुषार्थ ही व्यक्ति के धर्माचरण का प्रयोजन था। धर्म के आचरण से प्राप्त होने वाले इहलौकिक और पारलौकिक सुख ही मनुष्य जीवन का लक्ष्य था। विशेषरूप से संहिताकाल के बाद ब्राह्मणकाल में विकसित जटिल यज्ञपरायण वैदिक धर्म में लगभग सारा ही कर्म-वितान किसी-न-किसी लौकिक या पारलौकिक इच्छा की पूर्ति के लिये ही है। काम पुरुषार्थ के साधनभूत इस विशाल कर्मकाण्ड की बारीकियों के विवेचन के लिये विशाल मीमांसा दर्शन की उत्पत्ति हुई। वेदों में विहित लगभग सभी नित्यनैमित्तिकादि कर्म व्यक्तिगत सुख और कल्याण की प्राप्ति के लिये हैं। इस तरह पर्याप्त लम्बे समय तक काम पुरुषार्थ साध्य और धर्म तथा अर्थ पुरुषार्थ साधन कोटि के पुरुषार्थ रहे। उपनिषद् काल और उसके बाद के काल में, 'मोक्ष' पुरुषार्थ के विकसित और पुष्ट होकर चरम पुरुषार्थ की जगह लेने तक काम ही सर्वोच्च पुरुषार्थ रहा। आज भी सामान्य व्यक्ति के व्यावहारिक जीवन में काम पुरुषार्थ का महत्त्व संभवत: सबसे अधिक है। (क्रमश:)

बनकर ज्योति जलें

भानुदत्त त्रिपाठी 'मधुरेश'

आओ हम सब मानवता के स्नेहिल गाँव चलें।
जीवन पथ पर प्रेम-दीप की बन कर ज्योति जलें ।।
सबके मन में शुभ आशा हो, सब के हित की अभिलाषा हो,
ऐसे कृत्य करें हम, जिनसे नर की पूरित परिभाषा हो।
हो नरत्व जिनमें आमंडित वही विचार पलें ।।
स्नेहशील हो जीवन सारा, टूटे तुच्छ स्वार्थ की कारा,
धरती स्वयं स्वर्ग बन जाये, ऐसा हो अभियान हमारा।
द्वेष-दम्भ दानवता को हम बन कर वज्र दलें ।।
मति-गति हो सबकी कल्याणी, नर से निर्भय हों सब प्राणी,
गूँजे भारत की धरती पर बन जीवन में वैदिक वाणी।
दैवी गुण मानव समाज में फूलें और फलें ।।
आओ हम सब मानवता के स्नेहिल गाँव चलें।

विवेकानन्द और गाँधी

मोहनसिंह मनराल, अलमोड़ा, (उ.प्र)

भारत और विश्व को विगत दो सदियों में जिन दो महान व्यक्तियों ने अपने पराक्रम से चकाचौंध किया, उनमें स्वामी विवेकानन्द के बाद महात्मा गाँधी का नाम आता है। स्वामी विवेकानन्द के व्यक्तित्व ने युगपरिवर्तन का युगान्तकारी कार्य सम्पन्न किया। उन्होंने पूरे विश्व में शोषण, अन्याय और दासता के विरुद्ध एक युद्ध का आह्वान किया। उनके चमत्कारी आह्वान ने युगों की जड़ता को तोड़ा। मानव में विद्यमान दिव्य शक्तियों को प्रकट करने में सहायता की। जब उन्होंने पश्चिम के मंच से सिंहनाद किया, तो वह पूरे विश्व का कुण्डलिनी जागरण था। वह एक नये हिन्दू धर्म का सूत्रपात था, जो आगे चलकर समग्र मानव जाति के लिये सेवा-धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

शिव-भाव से जीव-सेवा : स्वामी विवेकानन्द

शिकागो से वापस आकर स्वामी विवेकानन्द ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण कर कई स्थानों पर अनेकों सभाओं के द्वारा लोगों में अपने धर्म, संस्कृति, शिक्षा-संस्कार और सर्वोपरि राष्ट्रभक्ति का प्रचार-प्रसार किया। मानव के स्वाभिमान एवं गरिमा का बोध कराया। युवकों में आत्मविश्वास को जगाया और समस्त मानवता की ईश्वर के रूप में सेवा करने का सन्देश दिया। उन्हीं की योजनाओं को देश-कालानुरूप बनाकर महात्मा गाँधीजी ने अपनी लोक-सेवा प्रारम्भ की।

सेवा ही धर्म है

स्वामी विवेकानन्द के सिंहनाद ने भारतीय नव-जागरण में प्राण फूँके और स्वतन्त्रता संग्राम को एक नई ऊर्जा प्राप्त हुई। क्रान्तिकारियों को उसने बलिदान होने का मनोबल दिया, तो नरम-दल वालों को असहयोग का साहस। भारत का कोई देशभक्त, क्रान्तिवीर शेष न रहा, जो स्वामीजी के विचारों से प्रभावित न हुआ हो। उन्हीं में एक थे महात्मा गाँधी। भारत की स्वतन्त्रता व समानता के अग्रदूत बहु-आयामी व्यक्तित्व के धनी, साहसी, निर्भीक व सत्य के साधक बापू हमारे राष्ट्रपिता जो अपने बारे में कहते हैं - "मेरा जीवन सत्य की एक प्रयोगशाला है। मेरे सारे जीवन में केवल एक ही प्रयत्न रहा है और वह है मोक्ष की प्राप्ति, ईश्वर का साक्षात् दर्शन। मैं जो कुछ भी करता हूँ, मेरे सामने एक ही ध्येय है। उसी को लेकर मैं जीवित हूँ। मेरे व्याख्यान, मेरे लेख और मेरी सारी राजनीतिक हलचल सभी उसी ध्येय को लक्ष्य में रखकर गति पाते हैं। मेरा यह दावा है कि मैं भूल नहीं करता।... सत्य मेरे लिये सर्वोत्तम धर्म है, जिसमें सारे धर्म समा जाते हैं। मेरा पूर्ण विश्वास है कि सेवा ही धर्म है और सेवा में ही ईश्वर का साक्षात्कार है।"

दूसरी ओर स्वामी विवेकानन्द को हम ऐसे व्यक्तित्व का आह्वान करते पाते हैं, जो पूर्ण नि:स्वार्थ हो और मानवता के लिये अपने जीवन का बलिदान करने को तत्पर हो। जो अपने स्त्री-पुत्र, घर-द्वार व उनके प्रति ममत्व का परित्याग कर पूरे समाज, देश और विश्व को अपना जानकर कर्म-क्षेत्र में उतर जाय। राष्ट्रपिता बापू इस कसौटी पर खरे उतरते हैं, यह उनके व्यक्तित्व व कृतित्व से सिद्ध हो जाता है।

गृहस्थ योगी

महात्माजी का जीवन सही अर्थों में सत्य, अहिंसा, ईश्वर-आस्था व मानव सेवा को समर्पित एक गृहस्थ योगी का जीवन था। उन्हें मोक्ष प्राप्ति हेतु ध्यान-धारणा के लिए गुफा में जाने की आवश्यकता न थी और न कर्म के लिये कारखानों की। उनके लिये सर्वत्र ही प्रभु की आराधना का स्थान था। जैसा कि उन्होंने कहा था, "भाई मैं तो एक पल के लिये भी ईश्वर-भजन को नहीं बिसारता, पर मेरे लिये लोक-सेवा ही ईश्वर-भजन है।" वे अपने प्रत्येक कार्य को इसी दृष्टि से, लगन से, एकाग्रता व पूजा से पूरा करते थे और कह सके थे कि मैं कोई भूल नहीं करता। उनका जीवन इस विश्व के लिये बलिदान-स्वरूप रखा था। उसका परिणाम भी वही हुआ था।

यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं कि वे अपनी मातृभूमि से दूर अश्वेतों के एक देश में मानवता के प्रति जघन्य अत्याचारों से व्यथित होकर सत्य और मानवाधिकारों के पक्ष में न्याय की लड़ाई जीतकर मोहनदास से गाँधी में परिणत होकर स्वदेश लौटे थे। यह ठीक वैसा ही लगता है जैसे स्वामी विवेकानन्द एक अपरिचित संन्यासी के रूप में अमेरिका पहुँचे थे और धर्म-महासभा में अपने चमत्कारिक व्याख्यान के बाद विश्वविजयी होकर भारत लौटे थे। जिस प्रकार स्वामाजी ने वेदान्त प्रचार का अपना कार्य पश्चिम में शुरू कर भारत में जारी रखा था, उसी प्रकार बापू ने सत्य और अहिंसा का प्रयोग एक अस्त्र के रूप में दक्षिण अफ्रीका के बाद भारत के स्वाधीनता संग्राम में किया और सफलता प्राप्त की।

व्यावहारिक वेदान्त

महात्मा गाँधीजी ने बेलूड़ मठ में स्वामीजी के निवास-कक्ष का दर्शन किया और कहा था कि स्वामीजी को पढ़कर

मातृभूमि के प्रति उनके प्रेम में वृद्धि हुई है। स्वामीजी की पूजा के रूप में मानव की नि:स्वार्थ सेवा को मानो बापू ने अपने लिये ईश्वर-भजन का माध्यम बना लिया था। तभी तो अपने तीनों आश्रमों साबरमती, वर्धा और सेवाग्राम में वे एक नर्स, पिता, शिक्षक, गुरु, सफाई-कर्मी, सभी का दायित्व इस कुशलता से निभाते कि लगता वे स्वामीजी के वेदान्त को व्यवहार में जी रहे हैं। वे नियमित रूप से प्रार्थना, चरखा-कातना, कोढ़ियों की मरहम पट्टी, रोगियों की सेवा, गरीबों के लिये रजाई बनाना, पाखाना साफ करना, झाड़ू देना, उपवास-भजन व राजनीतिक गतिविधियों को समय देना इत्यादि कार्य इस कुशलता व दक्षता से करते कि उसकी महक उनके साथ रहने वाले सेवाकर्मी और देश भर में फैले आजादी के दीवानों तक अपने आप पहुँच जाती और बिना कहे प्रेरित होकर उनके पीछे चल पड़ते। उनके एक जीवनीकार घनश्यामदास बिड़ला लिखते हैं, "नेता बहुत देखे, संत भी बहुत देखे, मनुष्य भी देखे, पर एक ही मनुष्य में सन्त, नेता और मनुष्य की ऊँचे दर्जे की आत्मीयता मैंने और कहीं नहीं देखी।"

बापू के महान जीवन की मधुरता हम इस शब्द-चित्र से लेने का प्रयास करेंगे -

"महात्माजी ने सत्य की साधना की, अहिंसा का आचरण किया, ब्रह्मचर्य का पालन किया, भगवान की भक्ति की, दलित व शोषितों का हित साधा, दरिद्र-नारायण की सेवा की, स्वराज्य के लिये युद्ध किया, खादी आन्दोलन को अपनाया, हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये प्रयास किया, किसानों के शोषण करने वाले अंग्रेजों का मुकाबला किया, सत्याग्रह के अस्त्र के रूप में उपवास का प्रयोग किया, स्वयं को कष्ट देकर अहिंसा को बल दिया, प्राकृतिक चिकित्सा को अपनाया, गोवंश की रक्षा की योजनायें बनाईं, प्राथमिक शिक्षा व कुटीर उद्योगों को बेरोजगारी दूर करने का रामबाण इलाज जानकर अपनाया, भारतीय बनों व स्वदेशी पहनों का नारा दिया और मानव-मानव के बीच भेदभाव मिटाने के लिये 'हे राम' कहते हुए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। इन सबका का एकीकरण गाँधी की पहचान बनकर रह गया।"

दोनों का कोई विकल्प नहीं

महात्मा गाँधी और स्वामी विवेकानन्द का जीवन एक खुली किताब है, जिसे पढ़ने और समझने के लिये बुद्धि के साथ-साथ हृदय की भी आवश्यकता है। मात्र बुद्धि तथा तर्क-विचार से इन्हें समझना असम्भव है। यहाँ साधुता, पवित्रता, त्याग-तपस्या एवं आचरण की आवश्यकता है, तभी हम इन महापुरुषों को समझ सकते हैं। यदि इस दृष्टि से देखा जाय, तो पूज्य बापू के जीवन में विवेकानन्द के भावों का ही उदय नजर आता है। विवेकानन्द जिन बीजों को बो गये थे, महात्मा जी ने उन्हें अपने जीवन-जल से सींचा, अंकुरित किया और मातृभूमि ने स्वतंत्रता, समानता, धर्मनिरपेक्षता, अस्पृश्यता-निवारण, नारी-मुक्ति, अंध-विश्वासों से छुटकारा इत्यादि के रूप में उस फसल को काटा।

स्वामी विवेकानन्द ने गरीबों, उत्पीड़ितों के प्रति सहानुभूति और प्राणपण प्रयत्न को अपनी वसीयत के रूप में नई पीढ़ी को सौंपा और बापू ने अपने सपनों के भारत या स्वराज्य में इन्हीं लोगों की भागीदारी की शर्त रखी। आज का लोकतंत्र इन्हीं लोगों की आवाज पर खड़ा महल है, जो उनकी उपेक्षा के साथ खण्डहरों में बदल जायेगा।

आज और आनेवाले कल के सन्दर्भ में गाँधी और विवेकानन्द दो ऐसी महान आत्मायें और व्यक्तित्व हैं, जो पूरे विश्व को आलोकित कर मार्गदर्शन कर रहे हैं। निश्चय ही इनका दूसरा कोई विकल्प नहीं है। ***

प्रभु-दर्शन की शर्त

पुरुषोत्तम नेमा, गोटेगाँव (उ.प्र.)

प्रेम, शर्त है प्रभु दर्शन की, सुबह दोपहर शाम करें।
प्रभु प्रदत्त है, प्रभु हिताय है, इसे नहीं बेकाम करें।।
यद्यपि छोटा, विश्व समाया, इन्द्रजाल-सा बना हृदय,
प्रभु वैभव को, आँख-कान से, अपने में कर रहा विलय,
तरह-तरह के आवरणों में, अपना रूप दिखाता,
झलक दिखा, पहचान बताता, दिखता, फिर छिप जाता,
शिशु क्रीड़ा में छलक रहा जो, उससे अपना जाम भरें।।
छल-कपट छोड़ यदि देखें, वह है पूजा-पूज्य-पुजारी,
घिसट रहा विकलांग बना जो बनकर खड़ा भिखारी,
माता-पिता में प्रकट रूप है, मित्रों में दिख जाता,
व्याप रहा है जड़ चेतन में रूप अनेकों दिखलाता,
भले न भेजे प्रकट पावती, पर हम उसे प्रणाम करें।।
कथा सुनाये वही मंच से, वही बना बैठा श्रोता,
सबमें सदा बराबर रहता, कभी न घट-बढ़-होता,
अणु विराट में प्रभु ही प्रभु हैं, प्रेमांजन से दीखे,
जो भी चाहे दर्शन करना, मात्र प्रेम करना सीखे,
प्यारे प्रभु की प्रेम-प्रसादी, यत्र-तत्र-सर्वत्र भरें।।
प्रेम, शर्त है प्रभु दर्शन की, सुबह दोपहर शाम करें।
प्रभु प्रदत्त है, प्रभु हिताय है, इसे नहीं बेकाम करें।।

रामकृष्ण संघ का मूल प्रेरणा-स्रोत दक्षिणेश्वर, बेलूड़ मठ आदि के चित्र

दक्षिणेश्वर माँ काली

दक्षिणेश्वर मन्दिर

नीलाम्बर बाबू उद्यान-गृह
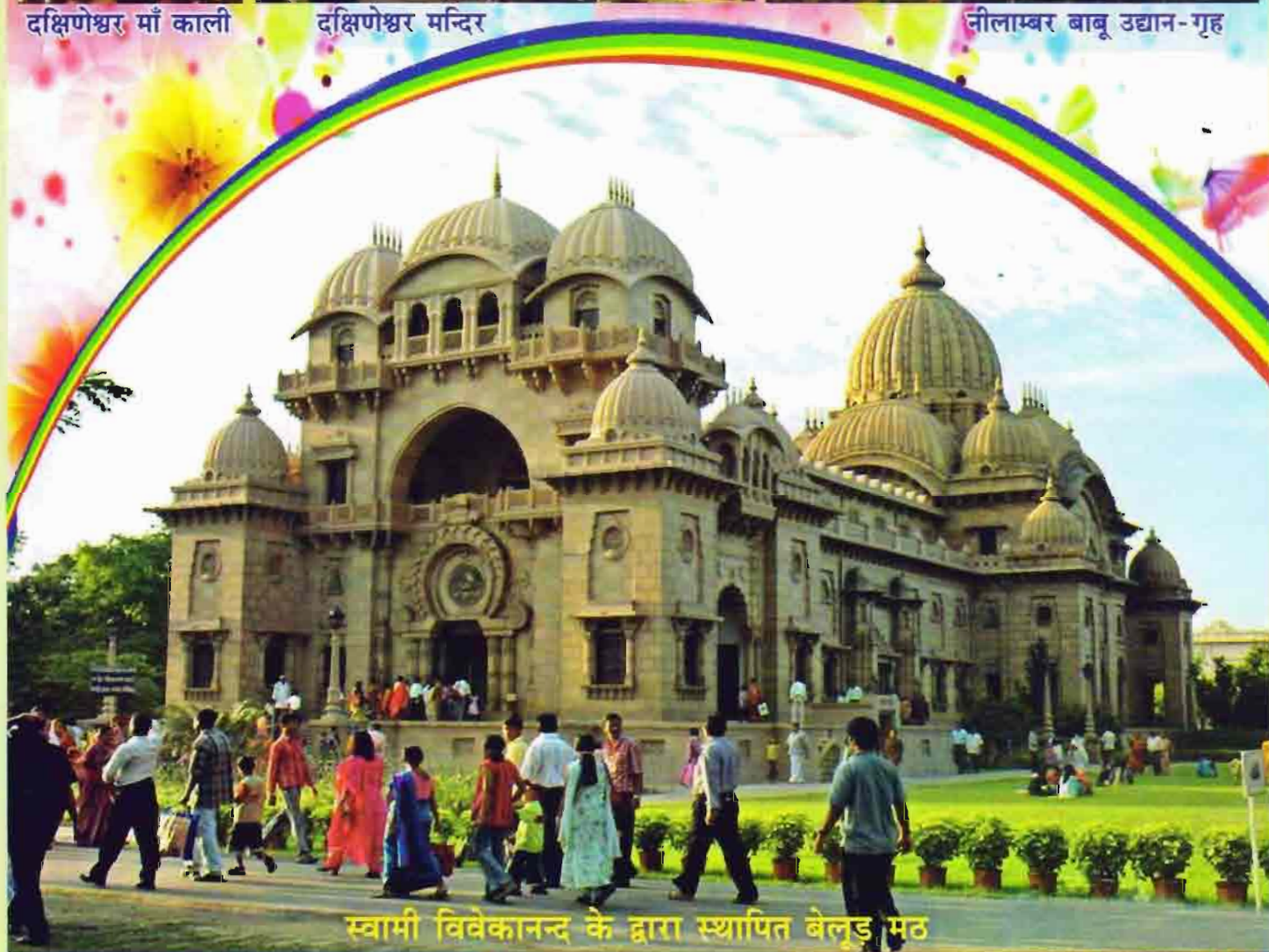
स्वामी विवेकानन्द के द्वारा स्थापित बेलूड़ मठ

श्रीरामकृष्ण-लीलाभूमि, काशीपुर उद्यान भवन

रामकृष्ण संघ का प्रतीक चिन्ह

रामकृष्ण संघ का प्रथम मठ वराहनगर

विश्वव्यापी रामकृष्ण मिशन के छत्तीसगढ़ और मध्यप्रदेश स्थित आश्रमों के चित्र

रायपुर रामकृष्ण मन्दिर

रायपुर आश्रम परिसर

रायपुर आश्रम परिसर

इन्दौर विद्यालय

नारायणपुर रामकृष्ण मन्दिर

नारायणपुर विवेकानन्द विद्यालय

भोपाल आश्रम परिसर

भोपाल चिकित्सालय

भोपाल विद्यालय

छत्तीसगढ़ एवं मध्य प्रदेश की प्राकृतिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विरासत
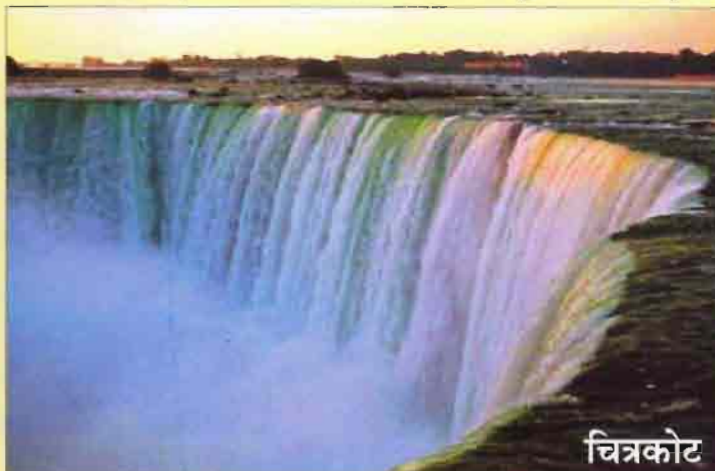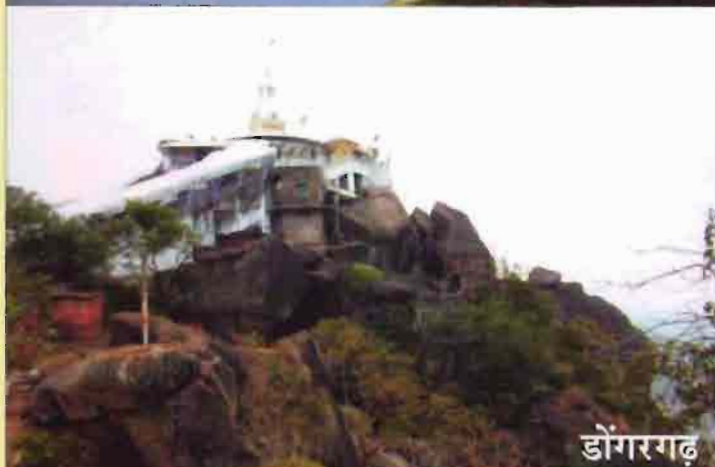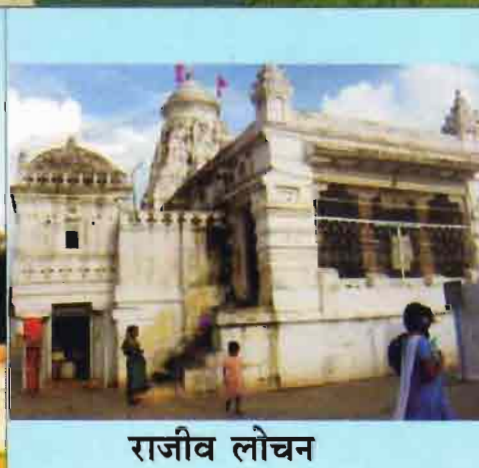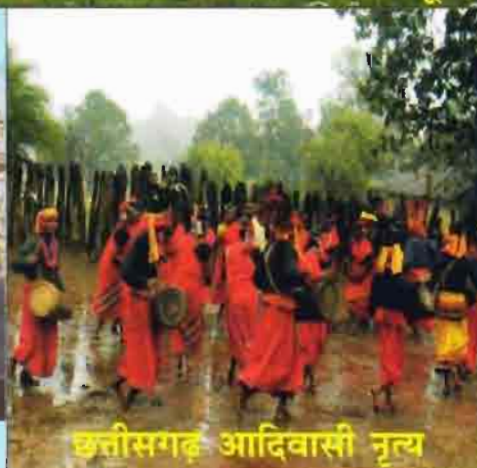
विश्व प्रसिद्ध स्वामी विवेकानन्दजी की मूर्ति, स्वामी विवेकानन्द हवाई अड्डा और विवेकानन्द आश्रम द्वारा रायपुर में की गई सभाओं के चित्र

स्वामी विवेकानन्द सरोवर, रायपुर

स्वामी विवेकानन्द हवाई अड्डा, रायपुर

रायपुर आश्रम की सर्व-धर्मसभा का एक दृश्य

मदर्सप्राइड स्कूल में स्वामी सत्यरूपानन्दजी का छात्रों को सम्बोधन

शासकीय इंजनीयरिंग कॉलेज, रायपुर में सभा

रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर की सभा में छात्र-छात्राएँ, शिक्षकवृन्द

माया सुरजन बालिका विद्यालय में 'विवेकानन्द रथ' और सभा

राजधानी

नवभारत

धर्म नगरी में नजर आये हजारों विवेकानंद

रायपुर में २५०० बच्चें बने विवेकानन्द, अखबार की कतरन

पत्रिका पृष्ठ और चित्र संयोजन - ब्रह्मचारी बोधमयचैतन्य

स्वामी विवेकानन्द की हिमालय-यात्रा (९)

स्वामी विदेहात्मानन्द, भूतपूर्व सम्पादक, 'विवेक-ज्योति, रायपुर

अब तक हमने देखा कि स्वामी अखण्डानन्दजी के साथ स्वामीजी ने छह दिन नैनीताल में निवास किया और उसके बाद पहाड़ों, जंगलों के मार्ग से अल्मोड़ा की ओर चल पड़े। मार्ग में स्वामीजी को कई प्रकार की आध्यात्मिक तथा अलौकिक अनुभूतियाँ हुईं। अल्मोड़ा में लगभग एक सप्ताह के प्रवास के दौरान कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाएं हुईं और वे आगे बदरिकाश्रम के मार्ग पर चल पड़े। – सं.)

एक बार अमेरिका में अपने मित्रों के साथ बातें करते हुए स्वामीजी ने अपने ऋषिकेश के दिनों के विषय में कुछ संकेत दिये थे। भगिनी निवेदिता ने अपने एक पत्र में लिखा है, "एक रात वे भक्ति के महान भाव से अभिभूत थे और हमें ऋषिकेश और वहाँ प्रत्येक संन्यासी के द्वारा बनायी जानेवाली कुटिया के बारे में बताने लगे। वे बोले कि शाम के समय सभी संन्यासी जाज्वल्यमान धूनी के चारों ओर अपने-अपने आसन पर बैठते हैं और धीमे स्वर में उपनिषदों पर चर्चा करते हैं; क्योंकि ऐसी मान्यता है कि व्यक्ति को संन्यास लेने के पूर्व ही सत्य का बोध हो जाना चाहिये। बौद्धिक रूप से वह शान्ति में प्रतिष्ठित हो चुका होता है, केवल अनुभूति ही बाकी रह गयी है, अत: सारे तर्क-वितर्क की आवश्यकता समाप्त हो चुकी है और अब उसे ऋषिकेश के पर्वतों के अँधियारे में धूनी के किनारे बैठकर उपनिषदों पर चर्चा मात्र करनी है। फिर क्रमश: आवाजें बन्द हो जाती हैं और निस्तब्धता छा जाती है। प्रत्येक संन्यासी अपने-अपने आसन पर सीधा होकर बैठा रहता है और उसके बाद वे सभी बिना कोई आवाज किये एक-एक कर उठकर अपनी-अपनी कुटिया में चले जाते हैं।"[२९]

उस अंचल के तत्कालीन परिवेश का वर्णन करते हुए श्री महेन्द्रनाथ दत्त लिखते हैं, "१८९० ई. तथा उसके पूर्व हरिद्वार, कनखल, ऋषिकेश आदि स्थान अत्यन्त दुर्गम थे। तब तक सहारनपुर तक ही रेल-लाइन थी। कुछ वर्षों बाद हरिद्वार नाम का एक स्टेशन बना। उन दिनों वहाँ रास्ते, घाट, पुल, मकान आदि कुछ भी नहीं थे।... वन भयंकर था और बहुत कम लोग ही वहाँ निवास करते थे। लोगों को सर्वदा जंगली हाथियों तथा बाघ का भय बना रहता था। गंगा तथा संग नदी के बीच में एक द्वीप पर सत्यनारायण का मन्दिर था और वहाँ चार-पाँच घरों की बस्ती थी। अब मन्दिर सहित वह द्वीप बाढ़ में बह चुका है। ऋषिकेश में एक काली कमलीवाले बाबा का तथा दो-एक अन्य भी अन्न-सत्र थे। दो सत्र बीच-बीच में बन्द रहते, केवल काली कमलीवाले बाबा का सत्र ही बारहों महीने खुला रहता। पहले का रास्ता मन्दिर के बगल से होकर जाता था। अब उस स्थान को त्रिवेणी घाट कहते हैं। उन दिनों वहाँ कोई बाजार नहीं था, केवल एक-दो मोदी की दुकानें थीं और एक लड्डू की दुकान थी। पथ की दुर्गमता के कारण कम यात्री ही वहाँ जाते थे। केवल साधु लोग ही वहाँ रहते और काली कमलीवाले बाबा के सत्र से भिक्षा ग्रहण करते। उन दिनों सत्र से साधुओं के जरूरत की सारी चीजें माँगते ही मिल जाती थीं और आनेवाले साधुओं को बड़ी श्रद्धा-भक्ति तथा यत्नपूर्वक भोजन कराया जाता। कमलीवाले बाबा उद्यमी तथा महा-त्यागी साधु थे। उन्हीं के प्रयासों से ऋषिकेश से उत्तराखण्ड के बद्रीनारायण के मार्ग में अनेक सदाव्रत, सत्र, रास्ते, पोल आदि स्थापित हुए थे। वे जैसे त्यागी थे, वैसे ही कर्मवीर भी थे। नरेन्द्रनाथ ने ऋषिकेश में निवास के दौरान कमलीवाले बाबा का दोनों ही भाव विशेष रूप से हृदयंगम किया था।... ऋषीकेश में उनकी बीमारी के समय औषधि तथा चिकित्सा की विशेष असुविधा हुई थी और साधुओं के अस्वस्थ होने पर उनकी जो दुर्गति होती थी, इन सब बातों को देख-समझ कर ही उन्होंने बाद में वहाँ (कनखल में) सेवाश्रम की स्थापना का प्रयास किया था।"[३०]

स्वामी अभेदानन्द जी ने अपनी आत्मकथा में बताया है कि पिछले वर्ष उन्होंने भी तुलसी महाराज (स्वामी निर्मलानन्द) के साथ ऋषिकेश की यात्रा की थी और वहाँ से बदरिकाश्रम, केदारनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री आदि तीर्थों का दर्शन करने के बाद ऋषिकेश लौटकर घास-फूस की एक झोपड़ी बनायी और उसी में कुछ काल निवास करते हुए तपस्या तथा शास्त्रों के अनुशीलन में बिताया था। वे लिखते हैं, "उन दिनों समग्र उत्तरांचल में कैलास मठ के महन्त धनराज गिरि का नाम प्रसिद्ध था। वे न केवल षड्दर्शन के अद्वितीय पण्डित थे, एक यथार्थ वैराग्यवान ज्ञानी संन्यासी-महात्मा थे। मैं प्रतिदिन उनसे शांकर भाष्य के साथ वेदान्त-दर्शन (ब्रह्मसूत्र) का अध्ययन करने लगा। मेरी तीक्ष्ण बुद्धि तथा अपूर्व शास्त्र-विचार-शैली को देखकर धनराज गिरि बड़े प्रसन्न हुए थे। स्मरण आता है, बाद में जब स्वामीजी

(विवेकानन्द) ने तीर्थ-भ्रमण के समय ऋषिकेश में जाकर धनराज गिरि से मेरे विषय में पूछा, उन्होंने मेरी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए कहा था, 'अभेदानन्द? उसकी प्रज्ञा अलौकिक है !' बाद में धनराज गिरि की वह बात स्वामीजी ने मुझे बड़े गर्व के साथ सुनायी थी, जिससे मैं समझा कि अपने गुरुभाई की प्रशंसा पर वे कितने आनन्दित हुए थे।''[३१]

वहाँ पर स्वामीजी का शंकर गिरि नामक एक पुराने साधु से परिचय हुआ। इन्हें स्वामीजी के साथ बातें करके विशेष आनन्द की उपलब्धि होती। वे कहते, ''पाण्डित्य की बात छोड़ो, बात को समझने वाला आदमी भी भला कहाँ मिलता है !'' वे ऋषिकेश की बहुत-सी पुरानी बातें सुनाते और कहते, ''उन दिनों ऋषिकेश सचमुच ही अरण्य था, झुण्ड-के-झुण्ड हाथी आया करते थे। अब क्या वैसा ऋषीकेश रह गया है? अब तो हो गया है रोटी-केश – इन दिनों सत्र में सहज ही रोटियाँ मिल सकती हैं और साधु भी बहुत हो गये हैं, आदि आदि।'' उन्होंने ही स्वामीजी को एक ज्ञानी साधु की कथा सुनायी थी, जिन्हें बाघ उठाकर ले जा रहा था, तो भी उनके मुख से निरन्तर 'सोऽहं सोऽहम्' की ध्वनि निकल रही थी। इन दिनों गुरुभ्रातागण विशेष रूप से वेदव्यास रचित 'ब्रह्मसूत्र' ग्रन्थ पर शांकर भाष्य का अध्ययन तथा उसी पर चर्चा किया करते थे।[३२]

ऋषिकेश के कुछ सन्त, कुछ घटनाएँ

ऋषिकेश में घटित कुछ घटनाओं का थोड़ा-बहुत उल्लेख गुरुभाइयों के वार्तालाप या पत्रों में यत्र-तत्र प्राप्त हो जाता है। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं।

महेन्द्रनाथ दत्त बताते हैं – पहाड़ में कुछ दिन बिताने के बाद सभी ऋषिकेश की ओर गये और वहाँ कुछ दिन निवास किया था। वहाँ नरेन्द्रनाथ ग्रन्थों का पाठ करते और सभी लोग सुना करते। इन लोगों के आपस में अत्यन्त घनिष्ठ भाव से रहने के कारण सभी लोग कहते, ''इन गुरुभाइयों का आपस में कैसा प्रेम तथा आकर्षण है। एक-दूसरे के प्रति ऐसा प्रेम प्राय: देखने में नहीं आता।''[३३]

जहाँ तक हमें ज्ञात है, अखण्डानन्दजी ने इन गुरुभाइयों के साथ ऋषिकेश में निवास नहीं किया था, तथापि उनके एक लिपिबद्ध वार्तालाप में मिलता है, ''हम छह लोग ऋषिकेश की एक झोपड़ी में लगभग दो महीने थे। इसे देखकर अन्य साधु लोग विस्मित रह गये थे और हमसे कहते, 'महाराज, आप कैसे इतने गुरुभाई एक साथ रहते हैं? हम लोग तो दो गुरुभाई दो दिन भी एक कमरे में लेटते हैं, तो झंझट लगा देते हैं।' बाद में वृन्दावन में एक दिन यह बात मैंने महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी से कही थी। उन्होंने आनन्दित होकर गद्गद् भाव से उत्तर दिया, 'इसमें आश्चर्य की क्या बात है ! तुम लोग कैसे एक सूत्र में गुथे हुए हो ! और तुम लोगों के गुरु क्या साधु-गुरु या मनुष्य-गुरु हैं? कोई ऐरे-गैरे गुरु होने से क्या कलकत्ते के लड़कों को इस प्रकार तैयार कर पाते? तुम लोगों के इस प्रकार निवास करने में आश्चर्य की क्या बात है?' ''[३४] सम्भव है कि यह हिमालय के ही कहीं अन्यत्र की घटना हो।

अखण्डानन्द जी ने एक अन्य रोचक घटना भी बतायी थी – ''ऋषिकेश में स्वामीजी से पूछा गया, 'आप लोग गिरि हैं या पुरी?' स्वामीजी ने उत्तर दिया, 'कचौड़ी।' दशनामियों में यह सब है – गिरि, वन, पर्वत, सागर, आश्रम।''[३५]

स्वामी तुरीयानन्द जी ने एक बार बताया था, ''हम लोग एक साथ ऋषिकेश में थे। स्वामीजी एक अलग कुटिया में रहते थे। सुबह वे हम लोगों के साथ चाय पीने आते थे। प्रतिदिन एक उत्तर भारतीय साधु वहाँ बैठकर गीता-पाठ करते थे। वे विशेष पढ़े-लिखे नहीं थे। पाठ में प्राय: ही त्रुटियाँ होती थीं। उन्हें 'गुडाकेशेन' शब्द के स्थान पर बार बार 'गुड्डाकेशेन' उच्चारण करते सुनकर स्वामीजी ने परम यत्न और विशेष सहानुभूति के साथ उनका सुधार कर दिया। इसके बाद वे हम लोगों से बोले, ''तुम लोग प्रतिदिन यह गलत पाठ सुनते हो, और उसे सुधारते नहीं? तुम्हारी साधु के प्रति जरा भी संवेदना नहीं है?'' अन्त में स्वामीजी ने उनसे कहा, ''महाराज, आप गीता से सहज ग्रन्थ 'विष्णु-सहस्र-नाम' का पाठ करें, तो सहज ही शुद्ध पाठ कर सकेंगे और भगवान के नामोच्चारण का आनन्द भी पायेंगे।''[३६]

❖(क्रमश:)❖

---

२९. स्वामी विवेकानन्द की पावन स्मृतियाँ, अद्वैताश्रम, प्रथम सं., पृ. ३५८ (द्रष्टव्य – भगिनी निवेदिता का ३ अगस्त १८९९ का पत्र) **३०.** श्रीमत् विवेकानन्द स्वामीजीर जीवनेर घटनावली (बँगला), ७ म सं., खण्ड १, पृ. १००-०१; विश्वपथिक विवेकानन्द, उद्बोधन कार्यालय, पृ. १८६ (द्र. उद्बोधन, वर्ष ९२ अंक १, माघ १३९६ में 'स्वामी विवेकानन्द, स्वामी ब्रह्मानन्द ओ काली कमलीवाला' लेख) ;**३१.** आमार जीवन कथा (बँगला), स्वामी अभेदानन्द, पृ. १५५-५६;**३२.** युगनायक विवेकानन्द, खण्ड १, पृ. २४७;**३३.** श्रीमत् स्वामी सारदानन्द स्वामीजीर जीवनेर घटनावली, सं. १३५५, पृ. ६५-६६; **३४.** प्रेमानन्द (बँगला), प्रथम भाग, स्वामी ओंकारेश्वरानन्द, रामकृष्ण साधन मन्दिर, देवघर, पृ. ११९; **३५.** स्वामी अखण्डानन्द के सान्निध्य में, स्वामी निरामयानन्द, पृ.१२५; **३६.** स्मृतिर आलोय स्वामीजी (बँगला), पृ. ७

'रामकृष्ण' नाम और नाम-साधना

स्वामी चेतनानन्द, सेन्ट लुई, अमेरिका
(अनुवादक-ब्रह्मचारी पावनचैतन्य)

(गतांक से आगे)

महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज लिखते हैं – "सृष्टि-क्रम में परा वाणी से पश्यन्ति, तत्पश्चात् मध्यमा वाणी का आविर्भाव होता है। सबके अंत में वैखरी वाणी की अभिव्यक्ति होती है। हम जिस वाणी का प्रयोग करते हैं, जो मुख द्वारा उच्चरित होती है, जो कण्ठ, तालु इत्यादि स्थान में वायु के संघर्ष से उत्पन्न होती है, वह वैखरी वाणी है।... गुरु शक्ति के प्रभाव से या तीव्र अभ्यास से वैखरी शब्द क्रमशः परिमार्जित तथा सुसंस्कृत होता है। हम जिस शब्द का उच्चारण करते हैं, वह अशुद्ध है, उसमें आगन्तुक दोष विद्यमान है। यह दोष दूर न होने पर मध्यमा में प्रवेश नहीं किया जा सकता। शब्द की बारम्बार आवृत्ति करने से धीरे-धीरे शब्दगत दोष क्षीण होता है। तब एक और श्वास-वायु ईडा-पिङ्गला के मध्य से होकर सुषुम्ना में प्रवेश करती रहती है। सुषुम्ना मध्यमार्ग – निर्विकल्प ज्ञान में जाने का राजमार्ग है। किन्तु यह अत्यन्त गुप्त पथ है। यह पथ नीचे की ओर एक प्रकार से निरुद्ध रहता है। .. वैखरी में यथाविधि जप करने से क्रमशः कण्ठ रोधित हो जाता है, इस ओर सुषुम्ना पथ धीरे-धीरे खुल जाता है। तब वायु और मन सूक्ष्म होकर सुषुम्नापथ में प्रविष्ट होते हैं। साथ-ही-साथ नाद का अभ्युत्थान होता है। नाद का उदय ही मंत्र चैतन्य का पूर्वाभास है ।"

मंत्र-चैतन्य बड़ा कठिन विषय है । साधना के बिना इसे नहीं जाना जा सकता। पुस्तक पढ़कर या भाषण सुनकर मंत्र-चैतन्य का बोध नहीं होता। अतः विभिन्न साधकों की साधनाओं के अनुभवों से हमें जानना होगा। विजयकृष्ण गोस्वामी लिखते हैं "साधना में ठीक-ठीक सिद्धि प्राप्त करने के लिये मंत्र-चैतन्य हो जाना चाहिये। मंत्र-चैतन्य नहीं होने से साधना निरर्थक है। सत्यप्रतिष्ठा से जैसे एक ओर आस्तिक्यबोध, आश्रय-आश्रित-बोध, आत्मीय बोध, आत्मबोध प्रस्फुटित होते रहते हैं, दूसरी ओर वैसे ही मंत्र-चैतन्य प्राप्त होता है। मंत्र, गुरु और देवता के एकीकरण का नाम ही मंत्र-चैतन्य है। मुक्ति पाने के लिये किसी भावबोधक शब्द-विशेष का मनन करने से उसी शब्द को मंत्र कहा जाता है।...ऐसे शब्द को मंत्र कहते हैं और उस शब्दगत अर्थ या ज्ञान को गुरु कहते हैं। शब्द के उच्चारण से जो अर्थ मन में उदित होता है, वही अर्थ उस शब्द का गुरु है। गुरु का अर्थ ज्ञान अथवा ज्ञानदाता से है। अज्ञान रूपी अंधकार से ज्ञानरूपी आलोक में ले जानेवाले को गुरु कहते हैं। और उस ज्ञान की अनुभूति को देवता कहते हैं। वास्तव में चिन्मय आत्मा की विशिष्टताओं को देवता कहते हैं। दोनों अनुभूतियों को देवता का स्थूल आविर्भाव कहते हैं और मंत्रादि उच्चारण के साथ उसका अर्थ और अनुभूति यदि एक साथ हो, तो मंत्र, गुरु और देवता एक हुए हैं, ऐसा कहा जा सकता है। स्थूल रूप से इसे ही मंत्र-चैतन्य कहते हैं।

एक दृष्टान्त देता हूँ – "मान लो, तुमने मुझसे सुना है कि तुम्हारे घर के निकटस्थ वृक्ष में भूत है। भूत है, ऐसा सुनकर तुम ज्ञात या अज्ञात रूप से मन में उसका स्मरण कर रहे हो। तुम भूत का अर्थ जानते हो कि भूत किसी भयावह जीव-विशेष का नाम है। तत्पश्चात् तुम किसी कार्यवश रात में उस वृक्ष के नीचे अचानक गए, अकस्मात् तुम्हारे मन में वह शब्द आ गया – 'भूत'। मैंने उस वृक्ष के भूत की सत्ता को सुस्पष्ट रूप से तुम्हारे मन में अंकित कर दिया था। तुम्हारे वृक्ष के नीचे जाते ही तुम्हारे रोम खड़े हो गये, गला सूखने लगा, छाती में दर्द होने लगा, डर के मारे तुम्हारे वृक्ष की ओर देखते ही सचमुच में भूत वृक्ष में उपस्थित हो गया। भय से तुम चीख उठे अथवा मूर्छित हो गए। यही हुआ तुम्हारा भूत का अनुभव या 'भूत' मंत्र में चैतन्य के युक्त होने का फल। यहाँ पर भूत शब्द अर्थ मंत्र है, उसके सम्बन्ध में जो मैंने वर्णन किया, वह गुरु और जो सच में भूत वृक्ष में उपस्थित होने का अनुभव हुआ, वह भूत-मंत्र का देवता है।"[१२]

जप करने की विधि और लक्षण

दीक्षा के समय गुरु शिष्य को जप-ध्यान की विधि बताते हैं, जिसका पालन अवश्य करना चाहिये। गुरु-वाक्य में विश्वास नहीं होने पर साधक साधना में आगे नहीं बढ़ पाते। ध्यान होना बहुत कठिन है। मन की चंचलता के कारण चिन्तन की धारा बाधित होती है। इसलिये पहले खूब जप करना होता है। बारम्बार नाम के स्मरण द्वारा भगवान को बुद्धि में स्थिर रखने के प्रयास का नाम जप-यज्ञ है। भगवान गीता में कहते हैं –"**यज्ञानां जपयज्ञोस्मि**' - मैं यज्ञों में जप-यज्ञ हूँ।

पृथ्वी के अधिकांश लोगों की यह शिकायत रहती है, ''मन चञ्चल है। क्या करें?'' शास्त्र का सीधा उत्तर है – ''अभ्यास और वैराग्य के द्वारा मन को वश में करो।'' श्रीमाँ सारदा देवी कहती थीं – १५-२० हजार जप प्रतिदिन करने से मन अवश्य ही शान्त होगा। स्वामी शिवानन्द जी महाराज १६-६-१९२२ के अपने एक पत्र में लिखते हैं – ''मन को स्थिर करने का एकमात्र प्रधान और सहज उपाय यही है – श्रीठाकुर की श्रीमूर्ति के सम्मुख बैठकर उनकी ओर देखते हुए, उनका नाम जप करना एवं मन में ऐसा दृढ़ विश्वास होना चाहिये कि ठाकुर तुम्हारी ओर देख रहे हैं और तुम जो उनका नाम-जप कर रहे हो, उसे वे सुन रहे हैं एवं तुम पर कृपा करने के लिये बैठे हुए हैं। ऐसा करने से तुम्हारा मन स्थिर होगा, प्रभु पर दृढ़ विश्वास होगा एवं शान्ति पाओगे।'[१३]

भगवान का नाम-जप विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है – जैसे वाचिक अर्थात् शब्द उच्चारण करके, उपांशु या धीरे-धीरे शब्द उच्चारण करके, जिसे केवल जप करनेवाला ही सुन सके और तीसरा है मानसिक जप। कुछ लोग माला या कर-गणना की सहायता से संख्या रखकर जप करते हैं, तो कुछ लोग चक्र-चक्र में (षट् चक्र द्वारा) जप करते हैं। कुछ लोग श्वास-प्रश्वास के साथ जप करते हैं। शास्त्र कहते हैं, मनुष्य प्रतिदिन अजपा जप करते हैं। श्वास ग्रहण के समय 'सो' शब्द होता है एवं प्रश्वास त्याग के समय 'हम्' शब्द होता है। दोनों मिलकर ''स: अहम्'' (वह मैं हूँ), इस मंत्र का सर्वदा जप करते रहते हैं। यही **'स: अहम्'** या **सोऽहं** मंत्र विपरीत होने पर हंस मंत्र होता है। इसलिये इसे हंस या अजपा गायत्री कहते हैं। **''सोऽहं हंस पदेनैव जीव जपति सर्वदा** ।'' यही जीव का स्वाभाविक जप है।

मन को कैसे ईश्वराभिमुखी रखा जाय, इसके लिये बहुत से साधकों ने विभिन्न प्रकार से साधना की है एवं उनका फल भी शास्त्रों में उल्लेखित है। जैसे चक्र में जप से मन को शीघ्र ही अंतर्मुखी किया जा सकता है। मनुष्य शरीर में मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा नाम के छ: चक्र होते हैं। एवं सर्वोपरि सहस्रार – जहाँ परमशिव हैं एवं मूलाधार में माँ कुण्डलिनी शक्ति हैं। साधक मूलाधार पद्म में मन स्थिर करके इष्टमंत्र जप करके स्वाधिष्ठान में उठते हैं। इसी प्रकार क्रमश: प्रत्येक चक्र में जप करते-करते सहस्रार में आरोहण करते हैं एवं वहाँ दुगुना जप करके प्रत्येक पद्म में जप करते-करते मूलाधार में उतरेंगे। इसी प्रकार जप करते-करते ऊपर-नीचे करेंगे। इसे ही षट्चक्रभेद कहते हैं। तंत्र कहते हैं -

मूलाधारे वसेत् शक्ति सहस्रारे सदाशिव:।
तयोरैक्ये महेशानि ब्रह्मतत्त्वम् तदुच्यते।।''

(आत्मसमर्पण योग, ९०-९१)

अर्थात् मूलाधार के पथ में जो शक्ति है, उसे सहस्रारस्थ शिव के साथ मिलन कराने को ही ब्रह्मतत्त्व कहते हैं। यही योग है।

श्रीरामकृष्ण-लीलाप्रसंग और श्रीरामकृष्ण-वचनामृत पढ़ने से यह जानकारी मिलती है कि ठाकुर श्रीरामकृष्ण मनुष्य के ज्ञात या शास्त्रानुमोदित जितने प्रकार के साधन हैं, उन्होंने प्राय: सभी प्रकार की साधनायें की थीं। बहुत सी नवीन साधनायें भी की थीं, जैसे वे भक्तों से कहते थे, ''ध्यान करने के समय सोचना कि जैसे मन की रेशमी रस्सी से इष्ट के चरण-कमलों को बाँध कर रखे हो, ताकि वे वहाँ से कहीं भी न जा सकें।''[१४] चंचल मन को नियंत्रित करने के लिये बहुत से लोग जप के साथ मूर्ति को जोड़ देते हैं। जैसे मन को कहा गया, तुम कामारपुकुर के श्रीरामकृष्ण की मूर्ति को देखकर सौ बार जप करो। तत्पश्चात् जयरामबाटी में श्रीमाँ की मूर्ति में सौ बार, दक्षिणेश्वर की काली में सौ बार, कृष्ण की सौ बार, शिव की सौ बार, ठाकुर के शयन कक्ष में एक सौ बार, नहबत में श्रीमाँ के सामने सौ बार, पंचवटी में सौ बार, काशीपुर में सौ बार एवं बेलूड़ मठ में ठाकुर के सामने सौ बार जप करने से एक हजार जप हो जाएगा। चंचल मन खेलना पसन्द करता है। यह भी वैसे ही है, जप लेकर ठाकुर के अनेकों रूपों के साथ खेलना हुआ।

दीक्षा के समय गुरु उपदेश देते हुए कहते हैं, ''सुबह शाम नित्य नियमित जप-ध्यान करना।'' जप को सफल करने के लिये निष्ठा, नियम और समय का पालन करना होता है। समय का पालन महत्वपूर्ण है। जैसे कोई व्यक्ति सुबह सात बजे नाश्ता करता है, दोपहर एक बजे भोजन एवं रात में आठ बजे भोजन करता है। वह पिछले ४०-५० वर्षों से इस प्रकार दिनचर्या का पालन कर रहा है। इन तीन समयों में उसका पेट खाने के लिये तैयार रहता है। ठीक वैसे ही समय निश्चित करके जप करने से मन भगवान के सान्निध्य के लिये तैयार रहता है। गोपीनाथ

कविराज कहते हैं - "समय-पालन का अर्थ है कि आपने जप करने के लिये एक नियम बना लिया है कि प्रात: चार बजे बैठूँगा, तो ठीक चार बजे ही बैठना है। चार बजे यदि आपका लाख रुपया भी चला जाए, तो भी आपको चार बजे बैठना ही है। यदि न बैठ सके, तो 'बाबा नहीं बैठ सका' ऐसा कहकर स्मरण करना होगा। किन्तु कम-से-कम एक मिनट के लिये स्मरण करना होगा। समय-पालन करना बहुत कठिन है। समय-पालन कर सकने से भगवान को साथ लेकर आया जा सकता है। ... अन्य समय अधिक समय के लिये बैठिए, किन्तु उस क्षण को न भूलिये। जैसे मुसलमान लोग करते हैं, जब रास्ते में जा रहे हैं और नमाज पढ़ने का समय हो गया, तो वहीं बैठ जाते हैं, वहाँ पर किसी मस्जिद की आवश्यकता नहीं होती, कुछ भी आवश्यक नहीं होता। समय-पालन न करने पर दस-बीस घण्टा परिश्रम करने पर भी कुछ नहीं होता है। कितनी कितनी बाधायें हैं, वे सभी आ जाती हैं। समय-पालन करने से वह नहीं होता, समय काल का नाशक है।"[१५]

योगदर्शन में पतंजलि कहते हैं – "**क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम्**" (३/५२) – अर्थात् काल के उस सूक्ष्म भाग को जिसका और विभाग न हो सके, उसे क्षण कहते हैं। उसमें एवं उनमें अविच्छेद समय और काल के प्रवाह में संयम करने से विवेक या समस्त वस्तु का असंकीर्ण रूप में साक्षात्कार होता है।" इस सूत्र के व्यास भाष्य को पढ़ने से क्षण रहस्य के सुन्दर मर्म को समझा जा सकता है।

स्वामी ब्रह्मानन्द एक बार वृन्दावन के एक सिद्धात्मा के प्रसंग में कहते हैं, "तब मैं और हरि महाराज (स्वामी तुरीयानन्द) एक साथ रहते थे । हमलोग नियमित रूप से खूब जप-ध्यान करते थे। विशेष आवश्यकता न होने पर हम लोगों के बीच बातचीत नहीं होती थी। माधुकरी से प्राप्त एक-दो रोटी जो होती, उसे खाकर रात आठ बजे के बाद सो जाते थे। पुन: रात बारह बजे उठकर हाथ मुँह धोकर जप में बैठते थे। न जाने क्यों उस दिन थोड़ी अधिक देर तक सो गया था। अचानक एक जोर का धक्का खाकर मेरी नींद खुली। जैसे किसी ने कहा, 'बारह बज गये, जप में नहीं बैठोगे?' मेरी निद्रा तब तक सम्पूर्ण रूप से टूटी नहीं थी। मैंने सोचा कि सोता हुआ देखकर संभवत: हरि महाराज ने मुझे जगा दिया था, किन्तु उनसे पूछने पर ज्ञात हुआ कि उन्होंने नहीं जगाया था। बहुत जल्दी से हाथ-मुँह धोकर जप करने बैठा, तो सामने देखा कि एक बाबाजी एकाग्र मन से जप कर रहे हैं। बाबाजी को अचानक देखने के कारण थोड़ा भय हुआ। जप करता था और बीच-बीच में उनकी ओर देखता था। जब तक बैठा रहा, बाबाजी भी सामने खड़े होकर जप कर रहे थे। उसके बाद नित्य ही देखता, वे उसी प्रकार ही जप कर रहे हैं।"[१६]

नाम में रुचि

हम भगवान का नाम-जप करते हैं, किन्तु भगवत् रस का आनन्द नहीं पाते हैं। सुबह-शाम पूजन-कक्ष में बैठते हैं एवं यंत्रवत माला जपते रहते हैं और आनन्द नहीं पाने के कारण पूजन-कक्ष से शीघ्र ही बाहर निकल आते हैं। पतञ्जलि योगशास्त्र में कहते हैं, "**स तु दीर्घकाल-नैरन्तर्य सत्कारा-सेवितो दृढ़भूमिः**" अर्थात् दीर्घकाल तक सदा-सर्वदा अत्यन्त श्रद्धा के साथ (योगारूढ़ होने का) प्रयास करने पर अभ्यास दृढ़ होता है। जप के द्वारा अन्तर्जगत् में प्रवेश करने के लिये धैर्य की आवश्यकता है। सिनेमा प्रारम्भ होने के पश्चात् यदि कोई सिनेमा हॉल में प्रवेश करे, तो वह चारों ओर अन्धकार देखता है। उस समय केवल कुछ दरवाजों के ऊपर Exit (निकास) का हल्का लाल प्रकाश मात्र रहता है। कुछ देर तक भीतर रहने पर धीरे-धीरे कुर्सियों की सब कतारें दिखायी देने लगती हैं एवं गाईड आकर टिकट देखकर बैठा देता है। उसी प्रकार हृदय का अंधकार नाम-जप के द्वारा आलोकित होता है, तब आनन्द प्राप्त होता है। तुलसीदास जी कहते हैं, जिस प्रकार घर के चौखट पर प्रदीप रखने पर भीतर और बाहर आलोकित होता है, उसी प्रकार जिह्वा पर 'राम' नाम जप करने से अन्दर-बाहर प्रकाशित हो जाता है।

अनुराग के बिना साधन-भजन नमकरहित सब्जी की भाँति स्वादहीन होता है। जिस प्रकार गाय को छिलका सहित खली प्रिय लगती है, उसी प्रकार अनुराग के साथ नाम-जप करने से रुचि होती है। शास्त्र कहते हैं, पित्तदोष होने पर जिह्वा में शक्कर अच्छी नहीं लगती, कड़वी लगती है। किन्तु औषधि की तरह प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा शक्कर खाने से पित्तदोष दूर हो जाता है एवं शक्कर में रुचि होती है। उसी प्रकार अज्ञानी व्यक्ति को भगवान का नाम अच्छा नहीं लगता, किन्तु यदि वह प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा नाम कीर्तन या जप करे, तो उसकी मोह-माया कट जाती है एवं वह भगवत् रस का आनन्द ले पाता है। कई बार

इनफ्लुएन्जा होने से जीभ का स्वाद चला जाता है। खाने में कुछ भी अच्छा नहीं लगता। तब भात-सब्जी के साथ थोड़ी-सी इमली का अचार मिलाने से थोड़ा स्वाद मिलता है। भगवत् अनुराग ही इमली का अचार है। शराबी को शराब की बात सुनने में अच्छी लगती है, तत्पश्चात् शराब की बोतल देखकर मन नाच उठता है, ढक्कन खुलते ही गंध से हल्का नशा शुरु हो जाता है, अंत में शराब पीकर आनन्द में डूबकर वह जगत को भूलकर जमीन पर या रास्ते में पड़ा रहता है। नाम करते-करते साधकों को हल्का नशा होता है। श्रीरामकृष्ण कहते थे, "भाँग-भाँग कहने से कुछ नहीं होगा । भाँग लाओ, भाँग घिसो, भाँग पीओ। तुम लोग तो संसार में रहोगे, तो थोड़ा हल्का नशा करके रहो। कार्य कर रहे हो, जबकि नशा लगा हुआ है।"१६

लौकिक जगत में देखा जाता है, हम जिन्हें नहीं देखना चाहते हैं, उनका नाम सुनने पर खिन्नता का बोध होता है और जिनके प्रति विशेष प्रेम रहता है, उनकी बातें सुननी अच्छा लगती हैं। इसी आत्मीय बोध से रुचि होती है। प्रियतम की बात कहने और सुनने में आनन्द होता है। 'विदग्धमाधव' नाटक में रूप गोस्वामी लिखते हैं, "कौन जानता है 'कृष्ण', ये दो अक्षर कितने अमृत से निर्मित हुये हैं। एक मुख से कृष्ण-नाम करने से संतुष्टि नहीं होती, अनेकों मुखों से कीर्तन करने की प्रबल इच्छा होती है। कान में एक बार सुनने पर अनेकों कर्णपुटों से सुनने की इच्छा होती है एवं मन के आंगन में एक बार उस नाम के आ जाने पर सारी इन्द्रियाँ मूर्च्छित हो जाती हैं।"

वैष्णव शास्त्र में 'नाम गान में सदा रुचि', यह एक विशेष साधना है। प्रेम साधना के विभिन्न सोपान हैं, जैसे प्रथम श्रद्धा, तत्पश्चात् साधुसंग, भजन, अनर्थनिवृत्ति, निष्ठा, रुचि, भगवान में अनुराग, भाव और प्रेम। महाप्रभु श्रीचैतन्य देव सरल भाषा में कहते हैं, 'जीवे दया नामे रुचि वैष्णव सेवन। ईहा बोई धर्म नाई शुनो सनातन।' अर्थात् हे सनातन ! जीवों के प्रति दया, प्रभु के नाम में रुचि, और वैष्णव-सेवा, इनसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म नहीं है।

श्रीरामकृष्ण नाम-साधना

पाँच सौ वर्ष पूर्व श्रीचैतन्य देव ने आकर नाम-साधना की शिक्षा दी थी। भगवान के नाम में सबका अधिकार है। भक्तों में धनी-निर्धन, विद्वान-मूर्ख, ब्राह्मण-चाण्डाल इत्यादि में कोई भेद नहीं है। चैतन्य देव का जप-मंत्र था – "राम राघव राम राघव राम राघव पाहि माम्। कृष्ण केशव, कृष्ण केशव, कृष्ण केशव रक्ष माम्॥" इसके अलावा "हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।" यह बत्तीस अक्षर युक्त सोलह नाम वैष्णव समाज में सुपरिचित है।

श्रीरामकृष्ण के नाम-साधना के प्रसंग में अक्षय कुमार सेन लिखते हैं, "मन को जो भूत पकड़ रखा है, उस भूत को छुड़ाने के लिये अर्थात् अशुद्ध मन को शुद्ध, विमल करने के लिये भगवान की शरण लेना एक सहज उपाय है। निरन्तर सरल, निश्छल मन से भगवान का नाम करते-करते अशुद्ध मन शुद्ध हो जाता है। ठाकुर श्रीरामकृष्ण देव बारम्बार कहते हैं कि नाम की अपार महिमा है। नाम ही बीज, नाम ही वृक्ष और नाम ही फल है। नाम के भीतर ही भगवान स्वयं विद्यमान हैं। उपदेशों को मनुष्य सहजता से स्वीकार नहीं करता, इसलिये श्रीरामकृष्ण लोक-शिक्षा के लिये स्वयं प्रातः-सन्ध्या हाथों से ताली बजाते हुए ताल-में -ताल मिलाकर नाचते-नाचते भगवान का नाम लेते थे, नाम में उन्मत्त हो जाते थे। उसके बाद नाम की उन्मत्तता गंभीर समाधि में परिणत हो जाती थी। इससे ठाकुर मानवों को दिखा रहे हैं और कह रहे हैं, जो समाधि जन्म-जन्म के अनेकों कठोर साधना से मिलती है, वही समाधि नाम के बल से भी पायी जाती है। ... नाम के शरणागत होना, नाम-श्रवण, नाम-कीर्तन करने को ही ठाकुर श्री रामकृष्णदेव नारदीय भक्ति कहते हैं। कलियुग में ईश्वर-प्राप्ति के लिये यह नारदीय भक्ति ही प्रसिद्ध है।

जिस प्रकार मेंढक के शब्द करते रहने पर हम लोग परस्पर की बातचीत नहीं सुन पाते, उसी प्रकार उच्च स्वर में नाम-संकीर्तन करने पर मन में कामना–वासना पराजित हो जाती है। लोग कहते हैं कि नाम काम को खा जाता है। श्रीरामकृष्ण ने स्वामी योगानन्द को काम के निरोध हेतु हरिनाम करने को कहा था। श्रीरामकृष्ण किस प्रकार नाम करते थे, उस प्रसंग में रामलाल दादा कहते हैं, "जय गोविन्द जय गोपाल, केशव माधव दीन दयाल। हरे मुरारे गोविन्द, वासुदेव देवकीनंदन गोविन्द । हरे नारायण गोविन्द हे। हरे कृष्ण वासुदेव।" ठाकुर सुबह-शाम इसे कहते हुए कभी-कभी नृत्य करते थे।"[१९] श्रीम इस प्रसंग में कहते हैं, "ठाकुर प्रतिदिन सन्ध्या के बाद एक मंत्र कहते थे, 'ब्रह्म माया जीव जगत् '। इसे जप करने से भी सिद्धि प्राप्त हो सकती है अर्थात् ईश्वर दर्शन होता है। वे कहते थे, "ये सब बहुत ही गोपनीय मंत्र हैं।"[२०] (क्रमशः) >

युवकों की जिज्ञासा और उसका समाधान

स्वामी सत्यरूपानन्द

८. भाग्य और प्रारब्ध क्या है ? कर्म से किसी को कम किसी को ज्यादा क्यों मिलता है ?

यदि हम हिन्दी के किसी मानक शब्दकोष को देखें, तो उसमें ये दोनों शब्द प्राय: समानार्थी ही लिखे होते हैं। भाग्य या प्रारब्ध हमारे पिछले जन्म तथा इस जन्म के कर्मों का सम्मिलित फल होता है। जैसे, हमारा जन्म किस परिवार में, किन स्थितियों में हुआ है। किस परिवेश हम पले-बढ़े हैं। यह सब हमारे पिछले जन शुभ-अशुभ कर्मों का परिणाम होता है। हम चाहे भाग्य कह लें या प्रारब्ध कह लें। इस पर इस जन्म में मनुष्य का कोई अधिकार नहीं होता है। वह इसमें कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। यह भाग्य या प्रारब्ध है। किन्तु मिली हुई परिस्थितियों का, सुविधाओं का उचित अथवा अनुचित उपयोग कर लेना, लगभग सर्वांश में व्यक्ति की अपनी दृढ़ता तथा कठिन परिश्रम पर ही अधिकांश निर्भर होता है।

यहाँ सबसे महत्वपूर्ण बात यह होती है कि व्यक्ति यथाशीघ्र ऐसा कर लें कि किशोरावस्था में ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर ले तथा सतत् उसे स्मरण रखे और उस पर विचार एवं तदनुकूल कार्य यथाशीघ्र प्रारम्भ कर दे।

९. प्रेम और मोह में क्या अन्तर है?

प्रेम मनुष्य जीवन की एक जन्मजात एवं स्वाभाविक प्रवृत्ति या भावना है। यह सदैव स्मरण रखें कि प्रेम स्थूल या भौतिक वस्तनहीं है। इसे देखा नहीं जा सकता। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव अवश्य करता है। यह स्वाभाविक एवं विशुद्ध भावना है।

मोह इसी प्रेम की विकृत अवस्था है। विकृत प्रेम जब स्वार्थ से मिल जाता है, तभी वह मोह बनता है। यह मोह कम-अधिक हो सकता है, किन्तु अपनी बढ़ी हुयी तथा विकृत अवस्था में सदैव ही प्रेम के विरुद्ध द:ुख एवं विनाश का ही कारण बनता है। जबकि प्रेम अपनी पूर्ण एवं उन्नत अवस्था में मनुष्य को महान-से-महानतर बनाकर ईश्वरत्व में प्रतिष्ठित कर देता है। पूरे विश्व में मनुष्य को सुखी, चरित्रवान एवं संसार-हितैषी बनाने में नि:स्वार्थ एवं अहैतुक प्रेम ही समर्थ हो पाता है। प्रेम असीम, अनन्त एवं परम कल्याणकारी होता है। मोह सीमित, विकृत एवं सदैव ही अमंगलकारी होता है।

८ सन्दर्भ

१२. ऋतम्भरा, पृ. २४१-२४६; **१३.** महापुरुषजीर पत्रावली, पृ २२१-२२४; **१४.**श्रीरामकृष्ण लीलाप्रसंग,भाग १, (बंगला) पृ.८१; **१५.** परमार्थ प्रसंग, ३ खंड, पृ. ५२-५३; **१६.** ब्रह्मानंद लीलाकथा, ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य, पृ.१६९; **१७.** श्री रामकृष्ण-कथामृत, १/परि./२; **१८.** श्री रामकृष्ण महिमा, पृ. १३२-१३३; **१९.** श्रीरामकृष्ण ओ अंतरंग प्रसंग, पृ. ५; **२०.** श्रीम दर्शन – स्वामी नित्यानन्द खंड-२, पृ.-१५१

दिवाली दिवाली निराली दिवाली ।
कालों का काल महाकाल काली ।।
धूममय आकाश है पूजा-धूप तेरे,
पटाखों की लौ है पूजा-दीप तेरे,
आबाल-वृद्ध-वनिता आराधक हैं तेरे,
बहुरंगी चमकती पटाखों की लाली ।।
आज की निशा की महारानी है तू
काल विजय की निशानी है तू,
तेरे श्याम तन की दीप्ति है निराली ।।
दिवाली दिवाली निराली दिवाली
– बी.एन.सी.

बालगीत

जय-जय दुर्गे माँ
श्री भुवनेश्वरी माँ
देवी भवानी माँ
काली कपालिनी माँ
जगदोद्धारिणी माँ
आनन्दरूपिणी माँ
जय-जय दुर्गे माँ ।।
आनन्द सागरी माँ
करुणासागरी माँ
देवी जय जय जय जय माँ
दुर्गे दुर्गे जय जय जय माँ

दीपावली

वनिता ठक्कर, वड़ोदरा (गुज.)

दीप जले दीप जले
दीपावली के दीप जले ।
घर-घर में होती पूजा,
खुशियों से घर-द्वार सजा ।
मिठाइयों की खुशबु उड़ी,
सबके मन भाये फुलझड़ी ।
रंगोली सजी द्वार-द्वार,
कितना सुन्दर यह त्योहार ।
दीप जले दीप जले
दीपावली के दीप जले ।

इक्कीसवीं सदी हेतु उचित शिक्षा

पी. के. कृष्ण

(प्रोफेसर पी. के. कृष्ण जी ने देश-विदेश में विज्ञान, शिक्षा संस्कृति पर बहुत से व्याख्यान दिये हैं। उन्होंने जुलाई १९९७ में स्वीडेन में आयोजित २२वें 'इंटरनेशनल मॉन्टेसरी कॉंग्रेस' में शिक्षा पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण बाल-मनोविज्ञान से पूर्ण विश्लेषणात्मक व्याख्यान दिया था, जिसे रामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' ने सितम्बर-अक्तूबर-१९९८ में प्रकाशित किया था। वर्तमान में शिक्षा की महती भूमिका को देखते हुये 'विवेक-ज्योति' के पाठकों के लिये वहीं से इसका अनुवाद सेवानिवृत्त अभियन्ता श्री एस. बी. जाधव, भिलाई ने किया है। – सम्पादक)

(गतांक से आगे)

३. पर्यावरणीय विनाश का महान संकट

दूसरी बड़ी समस्या जिससे आज हम जूझ रहे हैं, वह है वातावरण के ऊपर महान संकट । जिसके बारे में हम हमेशा अपने अखबारों और पत्रिकाओं में पढ़ते रहते हैं, वह है – ओजोन के पर्त का ध्रुवीय ग्लेशियर से हट जाना, 'ग्लोबल वार्मिंग' – वैश्विक उष्णाता, औद्योगीकरण से वातावरण का दूषित होना, विश्व की वन-सम्पदा को नष्ट करना, भू-सम्पदा का क्षरण, परमाणु विकीरण वाले अवशेष मलवे को फेंकना और अत्यधिक जनसंख्या । इसका मुख्य कारण, हमारी प्रकृति के प्रति शोषण करने की मानसिकता है, जो इस शताब्दी के दौरान हममें विकसित हुई है । हम अपने लाभ के लिए प्रकृति का, प्राकृतिक संसाधनों का अन्धाधुंध शोषण कर रहे हैं । विज्ञान एवं तकनीकि उन्नति के साथ बड़े पैमाने पर औद्योगीकरण हुआ । विश्व के विभिन्न राष्ट्रों में एक प्रतिस्पर्धा की दौड़ शुरु हो गई । सभी सर्वप्रथम अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में अपने-अपने राष्ट्र की आर्थिक उन्नति किसी भी कीमत पर प्राप्त करना चाहते हैं । आज पशु, पृथ्वी पर रहने वाले जीवों की तरह नहीं दिखते, बल्कि उन्हें मांस उत्पादन के औद्योगीकरण के लिए कच्चा माल समझा जाने लगा है । देश की नदियों और पर्वतों को देखने का दृष्टिकोण ऐसा हो गया, उन्हें ऐसी वस्तु समझने लगे जिसका अन्धाधुंध शोषण करके विद्युत उत्पादन करें या पर्यटन स्थल बनाने के लिये उसकी प्राकृतिक सौन्दर्यता को नष्ट कर दें । यहाँ तक कि परिवार के बच्चों को पारिवारिक सम्पत्ति समझा जाने लगा । प्रकृति को अपने उपयोग का साधन समझा जाने लगा, मानो हम इस जगत के स्वामी हैं । किन्तु क्या वास्तव में हम इस संसार के स्वामी हैं? क्या जगत का निर्माण हमारे लिये हुआ था? या हम प्रकृति के एक अंश हैं, जैसे अन्य वस्तुएँ हैं और हमें दूसरों के साथ सामंजस्यपूर्वक रहने की आवश्यकता है । हमें उन्हें अपना मित्र समझना चाहिये, उन्हें धन-सम्पत्ति अर्जित करने का संसाधन नही समझना चाहिए । यही हमारा प्रकृति के साथ सम्बन्ध है । इसी सम्बन्ध से मानव-समाज हजारों वर्षों से प्रकृति के साथ रहते आ रहे थे, परन्तु पिछली शताब्दी से हमारा व्यवहार प्रकृति के साथ छल-कपट का रहा है और जब तक कि हमारा यह बदला हुआ स्वरूप पुन: वापस पहले जैसा नहीं हो जाता, प्रकृति में किये हुये विध्वंस को पुन: जब तक नहीं सुधारा जाता, तब तक हमें एक-से-बढ़कर एक प्राकृतिक विपत्तियों, पर्यावरणीय विध्वंस से जूझना पड़ेगा । हमारे पास कई उन्नत कम्प्यूटर हो सकते हैं, शीघ्र क्रियान्वयन वाली योजनाएँ हो सकती हैं, परन्तु हमारे पास साँस लेने के लिये शुद्ध ताजी हवा नही होगी, और प्राकृतिक वातावरण के असन्तुलन होने के कारण नई बीमारियाँ होंगी, जो मानव-जीवन को जीवित रहने लायक नहीं छोड़ेंगी ।

४. तानाशाही

दूसरी बड़ी समस्या जिससे मानव संघर्षरत है, वह है संसार के अधिकांश राष्ट्रों की सरकारें, विशेषकर दुनिया के तृतीय राष्ट्रों की सरकारें, आज भी तानाशाहों के कब्जे में हैं, कहीं सैन्य तानाशाही, कम्यूनिस्ट तानाशाही, धार्मिक तानाशाही और कहीं प्रजातंत्र के रूप में तानाशाही है । संसार में बहुत कम ही राष्ट्र हैं जहाँ वास्तविक प्रजातंत्र है और जहाँ विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है, राजनीतिक स्वतंत्रता, व्यक्ति के जीवन के विकास की स्वतंत्रता, शासन से प्रश्न पूछने की स्वतंत्रता, सोचने और अपनी भावनाओं, आस्थाओं को लिखने की स्वतंत्रता है । तानाशाही सरकारें राजधर्म का गला घोंट देती हैं, जनतंत्र, जन-भावनाओं को कुचल देती हैं, वे लोगों को बताते हैं कि उन्हें क्या सोचना चाहिए, क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिए । इस शताब्दी का सबसे बड़ा अपराध तानाशाही जैसे घातक अपराधों का बढ़ना है ।

तानाशाही का मुख्य आधार, प्रमुख सिद्धान्त शक्तिशालियों द्वारा दुर्बलों का शोषण करना है । जब तक हम यह विश्वास करेंगे कि शक्ति का उपयोग दुर्बल का शोषण करना है, तब तक हमें यह मानना पड़ेगा कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', जो जंगल का कानून है, जंगल-राज है । दोनों ही जगह विभिन्न राष्ट्रों में और एक देश के अन्दर सत्ता की शक्ति का दूसरे के शोषण के लिये असभ्य उपयोग को देख सकते हैं । कहा जाता है कि सत्ता का मद भ्रष्ट करता है, और असीमित शक्ति असीमित भ्रष्टाचार लाती है । परन्तु बुराई सत्ता या शक्ति में नहीं होती है । शक्ति कुछ कार्य करने की क्षमता प्रदान करती है ।

वह क्या है, जो दुर्बलों के शोषण और उनके ऊपर प्रभुत्व प्राप्त करने और उनकी सहायता एवं सुरक्षा नहीं करने के लिये निर्देश देता है? जब तक मानव-समाज सत्ता, शासन के साथ अपने सम्बन्ध नहीं बदलता, तब तक सत्ता या शासन के अधिकार का उपयोग, विध्वन्स और प्रभुत्व को पाने के लिये होता रहेगा । इसलिये शिक्षा का मुख्य उद्देश्य ही शक्ति या सत्ता के उचित उपयोग की शिक्षा देना होना चाहिये, जो प्रजातंत्र का वास्तव में प्राण है ।

हम तानाशाही का तब विरोध करते हैं, जब यह राष्ट्र के शासन-तंत्र के स्तर पर होती है, परन्तु सभी प्रकार की तानाशाही बुरी होती है, चाहे वह किसी संस्था में हो, व्यापार में हो या परिवार में हो । अत: यदि हमें तानाशाही की समस्या को नष्ट करना है, तो व्यक्ति में प्रजातंत्र के भाव को प्रवेश कराना होगा ।

५. परिवारिक विखण्डन

विवाह करना एक पवित्र प्रथा है और परिवार की स्थापना कुछ सीमा तक कामनाओं को संयमित करने के लिये है । इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण यह सुनिश्चत करती है कि यह हमें आनेवाली भविष्य की पीढ़ी के प्रति कर्तव्य पालन में सक्षम बनाती है । मानव के शिशु को देख-भाल की, सुरक्षा की और ज्ञानार्जन के लिये सहायता की जरूरत होती है । कुछ दिनों के लिये या केवल कुछ माह की ही आवश्यकता नहीं होती, जैसे कि अन्य स्तन-धारी प्राणियों के सम्बन्ध में होती है । मानव-शिशु को २० वर्षों तक सहायता की जरुरत होती है, क्योंकि उस समय उसके सम्पूर्ण मानसिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक आयाम नव विकास की ओर अग्रसर रहते हैं । एक परिवार में जहाँ माता-पिता हैं, ऐसे परिवार में बालक का विकास होता है । अभिभावकों के साथ रहकर जितना अधिक बच्चों का विकास होता है, इससे अच्छे दूसरे मार्ग को आज तक कोई भी नहीं ढूँढ़ पाया है । बच्चे को जन्म देने पर माता-पिता का यह कर्तव्य है । यह उत्तरदायित्व माता-पिता मिलकर निभाते हैं । आज आधुनिक समाज में स्त्री और पुरुष के बीच का सहयोग टूट रहा है और समृद्ध समाज में तलाक का प्रतिशत बढ़कर साठ हो गया है । परिवार के टूटने से सबसे अधिक दुर्दशा उस परिवार के बालक-बालिकाओं की होती है, इसके कारण किशोर-अपराध की संख्या बढ़ रही है । स्पष्ट है हम अपने जीवन को सही दिशा में संचालित नहीं कर पा रहे हैं और हमें पुन: सोचने की आवश्यकता है कि हम कहाँ गलती किये हैं ।

६. सामाजिक कुरीतियाँ

अन्तिम किन्तु महत्वपूर्ण बात, समाज की बड़ी समस्या यह है कि वह कुरीतियों की ओर झुका रहता है । अन्धविश्वास, भ्रम और भ्रान्ति समाज में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी, पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है, इसलिये इससे सम्बन्धित समस्याएँ भी चलती रहती हैं । यदि यहूदी अपने बच्चों को सिखाते हैं कि अरबी उनके शत्रु हैं, और अरबी अपने बच्चों को सिखायें कि यहूदी उनके शत्रु हैं, तो नई पीढ़ी के बच्चे इसी शत्रुता की भावना से बड़े होंगे और शत्रुता का बीज उनके मस्तिष्क में गहरा जम जायेगा । इसी तरह की समान दुर्भावना कैथोलिक एवं प्रोटेस्टन्ट ईसाइयों या हिन्दुओं और मुसलमानों में है । बड़ों का अन्धविश्वास, रूढ़ीवाद युवा पीढ़ी में भी चालू रहता है और इसी तरह शत्रुता भी पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती रहती है । इसे कैसे समाप्त किया जाय?

जब तक हम बच्चों को आज्ञाकारी होने की शिक्षा नहीं देते और जो बड़े समझायें, उसे बच्चे अच्छी तरह से अंगीकार नहीं कर लेते, तब तक यह विद्वेष समाप्त नहीं होगा । इसलिये हम बच्चों के मस्तिष्क का ऐसा निर्माण करें, जो अन्वेषण-प्रवृत्ति वाला हो, जो जिज्ञासा से पूछे, जिसके बारे में उन्हें बताया गया कि वह क्या है, उस विषय में बालक सावधान हो । समाज में कई अन्धविश्वास, भ्रान्तियाँ हैं, इस सच्चाई के प्रति वह जागरूक रहे, उसे कई अन्धविश्वासों का परीक्षण कर उन्हें छोड़ देना पड़ेगा और क्या छोड़ना है तथा किसे सत्य स्वीकार करना है, उसका उसे स्वयं ही अन्वेषण करना होगा, उसे नई खोज

करनी होगी । किसी विचार को तर्क की कसौटी पर परखना, या उसमें कुछ भेद या अन्तर दिखाना, यह क्रमिक विचार-शक्ति का विकास है, क्या सच है, क्या असत्य है, यह जानना ही बुद्धि का जागरण है । बालक की बुद्धि को जाग्रत करने में बड़ों को कठिनाई हो सकती है, क्योंकि इसका प्रारम्भ प्रश्न से हो सकता है । वह प्रश्न उनके जीवन-मूल्यों और चाल-चलन, उनकी जीवन-शैली से हो सकता है । किन्तु यह आवश्यक है कि हम बच्चों को प्रश्न पूछने के लिये प्रोत्साहित करें और उनके विरोधों, विचारों को भी सम्मान दें, यदि हम ऐसे स्थायी दृढ़ समाज का निर्माण नहीं करते हैं, तो वे प्रबलता से प्राचीन रूढ़ियों एवं कुरीतियों में जकड़ जायेंगे ।

शिक्षा की भूमिका

इस अद्भुत विकास की शताब्दी के अन्त में यदि हम इतनी समस्याओं से संघर्ष कर रहे हैं, तो हमें अवश्य ही रुक कर स्वयं से प्रश्न पूछना चाहिये कि हमने क्या गलती की है । क्यों हम इतनी गम्भीर समस्याओं से जूझ रहे हैं, जबकि हमने इतना विकास किया है, इतनी शिक्षा, विद्या प्राप्त कर ली है, हमने इतनी अधिक ऊर्जा शक्ति का निर्माण किया है, और इतने अधिक बुद्धिमान हो गये हैं । क्या हमें अपनी उपलब्धियों पर और अधिक अच्छी तरह से नियंत्रण चाहिये या हमें अपनी दिशा को बदलने की आवश्यकता है? क्या इन समस्याओं का समाधान उसी प्रकार की शिक्षा से होगा, जैसी शिक्षा हम प्रदान कर रहे हैं? क्या हमें और भी उन्नत कम्प्यूटर की आवश्यकता है, और भी अधिक द्रुत गति से उड़ने वाले हवाई-जहाज चाहिए, और अधिक धन-सम्पदा चाहिये, अभी और अधिक शिक्षा, ज्ञान चाहिये, और अधिक सामर्थ्य, कार्य-कुशलता चाहिए और क्या इससे हमारी उपरोक्त समस्याओं का समाधान हो जायेगा? यदि ऐसा नहीं है, तो क्या हमें अपनी शिक्षा-क्षेत्र की प्राथमिकताओं का पुन: परीक्षण नहीं करना चाहिये, और क्या हमें अपने आप से यह प्रश्न नहीं करना चाहिये कि हम जिस दृष्टिकोण को लेकर शिक्षा क्षेत्र में काम कर रहे थे, वह कहाँ तक उपयोगी है?

वर्तमान शिक्षा का भविष्य : आधुनिक शिक्षा का दूरगामी परिणाम

आज की शिक्षा के प्रति हमारा क्या दृष्टिकोण है? हमारी क्या कल्पना है? हम कैसे मानव-निर्माण का लक्ष्य बना रहे हैं? एक देश से दूसरे देश के लक्ष्य में थोड़ा सा ही अन्तर हो सकता है, परन्तु सम्पूर्ण विश्व में, शिक्षा का लगभग एक ही लक्ष्य मानव का निर्माण करना है, जो बुद्धिमान हो, ज्ञानी हो, लक्ष्य-भेदन के लिये कठोर परिश्रमी हो, कार्य-कुशल, दक्ष हो, अनुशासित हो, चतुर, स्मार्ट, फुर्तिला हो, सफल हो, और अपने कार्यक्षेत्र का वह एक आशावादी नायक हो ! कोई अत्यन्त शालीनता से कह सकता कि एडोल्फ हिटलर में ये सारे गुण थे, फिर भी अधिकांश लोग, उसे इस शताब्दी का सबसे बुरा आदमी समझते हैं ! केवल एक गुण 'प्रेम एवं करुणा' का उसमें अभाव था । अत: हमारी वर्तमान शिक्षा प्रणाली में क्या है, जो एक हिटलर या छोटे हिटलर बनने से रोकती है? प्रचण्ड विध्वंसक अग्निकाण्ड, शायद इस शताब्दी का सबसे बड़ा अपराध था, और यह अपराध उस राष्ट्र में हो रहा था, जिस राष्ट्र में सर्वोत्तम विज्ञान, कला, संगीत और उन्नत संस्कृति के गुण हैं । क्या इन गुणों को नई पीढ़ी के मन में शिक्षा के माध्यम से डालने का लक्ष्य बना रहे हैं? वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में ऐसा क्या है, जो उस तरह के प्रचण्ड विध्वंसकारी अग्निकाण्ड की पुनरावृत्ति होने से रोक सके?

आज मानव के सामने जो प्रमुख चुनौतियाँ हैं, वे शिक्षा की कमी के कारण नहीं है । इन चुनौतियों का निर्माण एशिया या अफ्रिका के अशिक्षित ग्रामिणों ने नहीं किया । इन चुनौतियों का उद्भव अत्यधिक शिक्षित लोग, व्यापारियों, वकीलों, व्यवसाइयों, प्रशासकों, वैज्ञानिकों, अर्थशास्त्रियों, सेना के कमाण्डरों, कूटनीतिज्ञों, राजनीतिज्ञों और ऐसे लोग, जो योजनायें बनाते हैं और देश का शासन चलाते हैं, संस्थायें और व्यापार के संचालक करते हैं । अत: हमें यह देखने की जरुरत है कि हम किस प्रकार की शिक्षा दे रहे हैं, उसका परिमाण नहीं देखना है । जब हम ऐसा आंकलन करते हैं, तब हमें यह स्पष्ट हो जाता है कि हम असन्तुलित विचार वाले, एकांगी दृष्टिकोण के मानव का निर्माण कर रहे हैं, जो बहुत विकसित है, बहुत चतुर है, अपनी बुद्धिमत्ता में बहुत समर्थ है, परन्तु जीवन के दूसरे पहलू के बारे में अनभिज्ञ, अनाड़ी है । उच्च शिखर के वैज्ञानिक, इंजीनियर, जो मानव को चाँद पर भेज सकते हैं, परन्तु वे अपनी पत्नी या अपने पड़ोसियों के साथ क्रूर व्यवहार करते हैं, ऐसे मानव जिन्हें ब्रह्माण्ड के बारे में, ब्रह्माण्ड और उसकी क्रियाओं के विषय में अत्यन्त विस्तृत ज्ञान है, किन्तु उन्हें स्वयं के बारे में या अपने जीवन के

सम्बन्ध में बहुत थोड़ी-सी जानकारी है ।

व्यक्ति का यह असन्तुलित एकांगी विकास ही हमारी सभी समस्याओं का कारण है, जिनसे हम आज संघर्ष कर रहे हैं । एक शिक्षाविद् होने के कारण हमें यह स्वीकार करना चाहिये कि जब हम शिक्षा प्रदान करते हैं, तब हमारा यह उत्तरदायित्व हो जाता है कि हम उन्हें शिक्षा देकर उनकी बुद्धि को जाग्रत कर दें, जिससे वे अपनी बुद्धि का सही उपयोग कर सकें । हमारी आज की शिक्षा-प्रणाली इस उत्तरदायित्व के प्रति बहुत सावधान नहीं है, वह इस विषय पर गम्भीरता पूर्वक विचार नहीं कर रही है ।

शिक्षा का एक भिन्न दृष्टिकोण

हमने अब तक जो कुछ कहा है वह यह है कि हम कैसे इक्कीसवीं सदी की शिक्षा-प्रणाली में सुधार करें? किस प्रकार की बुद्धि के विकास का लक्ष्य हमें नई पीढ़ी के निर्माण में रखना है? किन गुणों को हमें भविष्य की पीढ़ी के मन-मस्तिष्क में भरना है? सभी राष्ट्रों के लिये शिक्षा-पद्धति का निर्धारण एक समान नहीं होगा और भिन्न-राष्ट्रों की भिन्न-भिन्न संस्कृतियों के अनुसार, उनके अनुपम स्तर के अनुसार भिन्न-भिन्न होगा, परन्तु उसकी रूप-रेखा निम्न प्रकार से बनायी जा सकती है ।

१. वैश्विक-मनोभाव, विश्वव्यापी मानसिकता का निर्माण करें, राष्ट्रवादी का नहीं

हम सभी एक विश्व के नागरिक हैं और हम अपने निवास के लिये आपस में सर्व-साधारण रूप से पृथ्वी को बाँट लेते हैं ! आज विश्व के किसी एक भाग में जो प्रभाव पड़ता है, उसका सम्बन्ध हम सभी से होता है । अत: हमें ऐसे मस्तिष्क की जरुरत है, जो सम्पूर्ण विश्व के प्रति संवेदनशील हो, सारे विश्व की संवेदना का अनुभव करे, केवल किसी एक राष्ट्र की नहीं । यदि राष्ट्र के अन्दर के विवादों को हम प्रजातांत्रिक ढंग से एवं न्यायपालिका के द्वारा सुलझा सकते हैं, तो क्या विभिन्न राष्ट्रों के विवादों के समाधान का भी यह सही मार्ग नहीं है? यदि हमारे पास विश्वव्यापी दृष्टिकोण हो, सार्वभौमिक चिन्तन हो, जो वास्तव में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' में विश्वास न करता हो, तो वहाँ किसी भी सैन्य-बल की आवश्यकता नहीं होगी और न ही युद्ध होगा । ऐसे भविष्य का हमें जरूर अनुभव करना चाहिए । भले ही हम स्थानीय समस्याओं को सुलझाने के लिये प्रयासरत रहें, परन्तु महत्त्वपूर्ण यह है कि ऐसा करते हुए हमारी समझ विश्वव्यापी हो ।

२. मानव का विकास ही महत्त्वपूर्ण हो

शिक्षा प्रणाली में राष्ट्र की आर्थिक उन्नति के लिये बच्चों को 'कच्चा माल' नहीं मानना चाहिये । शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य मानव का सर्वांगीण विकास – शारीरिक, बौद्धिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक होना चाहिये, जिससे वह बालक या बालिका, रचनात्मक और आनन्दमय जीवन जीये और विश्व का एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व बन सके । मानव-मानव में उनकी क्षमताओं में भिन्नता हो सकती है, परन्तु वे असमान नहीं हैं, न वे उत्कृष्ट हैं और न ही निकृष्ट हैं । इसलिये निरपेक्ष रूप से उनकी योग्यता के लिये उनका सम्मान किया जाना चाहिये । मनुष्य की निपुणता से ऊपर उसकी अच्छाइयों का सम्मान अवश्य होना चाहिये ।

३.जिज्ञासा को प्रोत्साहित करें, अनुपालन को नहीं

यह पद्धति बड़ों के लिये असुविधाजनक हो सकती है, परन्तु बच्चों के लिये यह महत्त्वपूर्ण है कि उनका विकास प्रश्न, जिज्ञासा के साथ हो, केवल उत्तर ही उनको न सुनाया जाय । स्वाभाविक है कि प्रत्येक बच्चों के प्रश्न भी होंगे, हरेक की जिज्ञासायें होंगी, परन्तु उनके जिज्ञासा का स्तर और सीखने की क्षमता अधिक महत्वपूर्ण है । आज्ञाकारिता और बिना कुछ पूछे, जो कुछ कहा जाय, उसे वे लोग बिना प्रश्न के स्वीकार कर लें, ऐसा नहीं होना चाहिये । हमें यह समझना चाहिये कि बच्चे और हमारे बीच के सम्बन्ध में कहीं भी भय नहीं होना चाहिये, क्योंकि बच्चे में डर उसकी जिज्ञासा एवं स्वत:स्फूर्त प्रेरणा को नष्ट कर देगा । बच्चा गलती करके भी, अभिभावक के बिना किसी डाँट-फटकार के निर्भय होकर सदैव स्वयं ही सीख सके, इसके लिये अवश्य ही स्वतंत्र हो । ऐसे मस्तिष्क का बालक बौद्धिक और विनम्र तो होगा, किन्तु वह कट्टर हठधर्मी नहीं होगा, वह परिवर्तन हेतु अपना मस्तिष्क खुला रखेगा, वह अविवेकपूर्वक तर्कहीनता के साथ किसी सिद्धान्त या धारणा से जकड़ा हुआ नहीं होगा । इस प्रणाली का प्रयोग निर्विवाद रूप से किसी भी क्षेत्र में राष्ट्वाद और अन्य मतों के लिये किया जा सकता है ।

(क्रमश:)

विवेक-चूडामणि

श्री शंकराचार्य

अनुवादक - स्वामी विदेहात्मानन्द

न देशकालासनदिग्यमादि-
लक्ष्याद्यपेक्षा प्रतिबद्धवृत्तेः ।
संसिद्धतत्त्वस्य महात्मनोऽस्ति
स्ववेदने का नियमाद्यवस्था ।।५२९।।

अन्वय – प्रतिबद्धवृत्तेः संसिद्धतत्त्वस्य महात्मनः देश-काल-आसन-दिग्-यमादि-लक्ष्यादि-अपेक्षा अस्ति न। स्ववेदने का नियमाद्यवस्था?

अर्थ – जिनकी चित्तवृत्तियाँ बद्ध हो गयी हैं, जो तत्त्वज्ञान में प्रतिष्ठित हो गये हैं; ऐसे महात्मा के लिये स्थान, काल, आसन, दिशा, यम (इन्द्रिय-संयम), लक्ष्य (ध्यान-धारणा) आदि की अपेक्षा नहीं रहती । स्वत: के ज्ञान (आत्मज्ञान) के लिये भला किस नियम की अपेक्षा हो सकती है?

घटोऽयमिति विज्ञातुं नियमः कोऽन्ववेक्ष्यते ।
विना प्रमाणसुष्ठुत्वं यस्मिन्सति पदार्थधीः।।५३०।।

अन्वय – यस्मिन् सति पदार्थधीः प्रमाण-सुष्ठुत्वं विना 'अयम् घटः' इति विज्ञातुं कः नु नियमः अवेक्ष्यते?

अर्थ – जिनके द्वारा पदार्थ का बोध होता है, उस प्रमाण (नेत्र आदि इन्द्रियों) की निर्दोषता के अतिरिक्त, 'यह घट है' यह जानने के लिये अन्य किस नियम की अपेक्षा होती है?

अयमात्मा नित्यसिद्धः प्रमाणे सति भासते ।
न देशं नापि वा कालं न शुद्धिं वाप्यपेक्षते ।।५३१।।

अन्वय – अयं नित्यसिद्धः आत्मा प्रमाणे सति भासते । देशं न वा कालं अपि न वा शुद्धिं अपि न अपेक्षते ।

अर्थ – यह नित्यसिद्ध आत्मा (महावाक्य-श्रवण आदि) प्रमाण से प्रकट होती है । यह अनुभूति स्थान, काल या शुद्धि की भी अपेक्षा नहीं रखती ।

देवदत्तोऽहमित्येतद्विज्ञानं निरपेक्षकम् ।
तद्वद्ब्रह्मविदोऽप्यस्य ब्रह्माहमिति वेदनम् ।।५३२।।

अन्वय – 'अहम् देवदत्तः' इति एतत् विज्ञानं निरपेक्षकम्, तद्वत् 'अहं ब्रह्म' इति वेदनं ब्रह्मविदः अपि वेदनं ।

अर्थ – (देवदत्त नाम के व्यक्ति को) 'मैं देवदत्त हूँ' यह बोध किसी बाह्य परिस्थिति की अपेक्षा नहीं रखता, वैसे ही ब्रह्मज्ञ व्यक्ति के लिये 'मैं ब्रह्म हूँ' यह ज्ञान भी (किसी बाह्य परिस्थिति की अपेक्षा नहीं रखता) ।

पुरुषार्थ की शिक्षा

के. बी. अग्रवाल, बरेली (उ.प्र.)

किसी नगर में एक व्यापारी रहता था उसके व्यापार का लगातार प्रसार हो रहा था, जिससे उसकी सम्पत्ति में वृद्धि हो रही थी । एक दिन व्यापारी ने सोचा अपनी सम्पत्ति का आकलन किया जाए । उसने हिसाब लगाया तो उसे पता चला उसके पास करोड़ों की राशि जमा हो चुकी है । उसने सोचा कि कुछ पैसे दान-पुण्य में लगाए जाएं । लेकिन वह यह तय नहीं कर पा रहा था कि उसे किस कार्य में लगाया जाए । वह चाहता था कि उसके धन का सदुपयोग हो और उसे पुण्य प्राप्त हो । काफी सोचकर उसने तय किया कि वह नगर में धर्मशालाएं, मन्दिर और अनाथालय बनवाएगा । यह निर्णय कर वह शुभ मुहूर्त निकलवाने एक माहत्मा के पास पहुँचा और उन्हें अपनी योजना कह सुनाई । व्यापारी को लगा कि महात्माजी यह सुनकर प्रसन्न होंगे और उसे शाबाशी देंगे, लेकिन इसके विपरीत वह गम्भीर होकर कुछ सोचने लगे । थोड़ी देर बाद उन्होंने कहा, 'भाई तुम्हारे पास जितनी सम्पत्ति है, करीब उतने ही लोग देश में ऐसे हैं, जो अपाहिज, अनाथ या आलसी हैं । ये लोग या तो भीख माँगकर गुजारा करते हैं या मन्दिरों , अनाथालयों और धर्मशालाओं की शरण लेते हैं या फिर चोरी करते हैं । इसलिये तुम्हारा धन कुछ ही दिनों में समाप्त हो जाएगा और तुम्हें पुण्य भी नहीं मिलेगा ।

व्यापारी दुविधा में पड़ गया । उसने हाथ जोड़कर कहा, 'फिर आप ही कोई रास्ता निकालें ।' महात्मा ने कहा, 'सेठ, मेरी समझ से तुम अपनी सोची हुई पद्धति में थोड़ा परिवर्तन कर दो, तो निश्चय ही तुम्हारा ध्येय सफल हो जाएगा ।' व्यापारी ने उत्सकुता से पूछा, वह कैसे महाराज? महात्मा ने मुस्कुराते हुए कहा, 'तुम धर्मशालाओं, मन्दिरों और अनाथालयों के स्थान पर विद्यालय, उद्योग और चिकित्सालय खुलवाओ, क्योंकि जब लोग स्वस्थ होंगे, शिक्षित होंगे तभी उद्यमी होंगे । जब वे पुरुषार्थ करेंगे तो भिक्षावृत्ति, चोरी और लूट-पाट समाप्त हो जायेगा । लोगों को दया-दान करने की अपेक्षा, उन्हें अधिक पुरुषार्थी बनाने की आवश्यकता है ।''

भारतीय संस्कृति की उत्सवधर्मिता और दीपावली

डॉ. राजलक्ष्मी वर्मा
(प्राध्यापिका, संस्कृत विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय)

भारतीय संस्कृति एक उत्सवधर्मी संस्कृति है, जो जीवन की विषमताओं और विसंगतियों में भी आनन्द का स्रोत खोज लेती है। भारत की मनीषा दु:ख के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी उसे जीवन की अन्तिम परिणति स्वीकार नहीं करती। जीवन आनन्द-पर्यवसायी है, क्योंकि उसकी उत्पत्ति जिससे हुई है, वह सत्ता स्वयं आनन्दरूप है। भारत की संस्कृति अध्यात्मप्रधान संस्कृति है, वह मनुष्य की दिव्यता में विश्वास रखती है और व्यवहार को भी परमार्थ से जोड़कर देखती है। वह अत्यन्त लौकिक सम्बन्धों में भी अलौकिकता का आधान करती है और सांसारिक अवसरों को, लोकैषणाओं को भी एक धार्मिक अनुष्ठान बना देती है। सांसारिक जीवन की समृद्धि और सफलताओं के लिये ईश्वर के आशीर्वाद की अपेक्षा होती है, यह हमारी आस्था का आग्रह है। इस प्रकार आस्था और जीवन के प्रति एक आशावादी दृष्टिकोण भारतीय मनोविज्ञान के दो प्रधान तत्त्व हैं और इनकी अभिव्यक्ति हमारे प्रत्येक पर्व, त्योहार और अनुष्ठान में होती है।

भारतवर्ष सचमुच ही उत्सवों का देश है, वर्ष भर में जितने तीज-त्योहार, पर्व और उत्सव हमारे यहाँ होते हैं, उतने अन्य किसी देश में नहीं होते। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि ये सभी उत्सव और अनुष्ठान एक ओर ईश्वर या दिव्यचेतना के प्रतिनिधि किसी देवता से जुड़े होते हैं और दूसरी ओर प्रकृति के किसी आयाम से। यह भारत के चिन्तक की जीवनदृष्टि का परिचायक है। वह मानता है कि मनुष्य दिव्य चेतना का अंश है और प्रकृति उसकी सहोदरा है; उसका योगक्षेम प्रकृति के योगक्षेम से जुड़ा है। आज जनसंख्या, औद्योगीकरण और निहित स्वार्थों के कारण हम भले ही प्रकृति का दोहन और विनाश कर आत्मघात की ओर अग्रसर हो रहे हों, किन्तु हमारे पूर्वजों ने मनुष्य और प्रकृति को एक दूसरे का पूरक ही स्वीकार किया है। उनकी यह जीवन-दृष्टि हमारे धर्म-दर्शन, साहित्य कलाओं और हमारे उत्सवों त्योहारों तथा मेलों में सर्वत्र दिखलाई पड़ती है। यही कारण है कि हमारे लोकोत्सवों की पृष्ठभूमि में कोई देवता, कोई तीर्थ या फिर किसी पुण्यतोया नदी का तट अवश्य रहता है। वस्तुत: जीवन का सम्बन्ध प्रकृति से है, उस प्रकृति से जो अपनी यात्रा में अश्रान्त और अम्लान है, जो कभी मरती नहीं, उसका एक रूप खोता है, तो दूसरा प्रकट हो जाता है। जीवन की चिरन्तनता का स्पर्श प्राप्त करने के लिये ही इस देश के ऋषि ने अपनी मानसिकता प्रकृति के साथ जोड़ी है; अन्त:प्रकृति में होने वाला प्रत्येक परिवर्तन हमारे जीवन में किसी पर्व उत्सव या मेले का रूप ले लेता है।

हमारे देश में वर्ष का प्रत्येक मास अनुष्ठानों से सजा है, किन्तु कार्तिक मास तो मानो उल्लास के उच्छलन का पर्व है। इस महीने में मनुष्य और प्रकृति दोनों ही क्लान्ति रहित होकर उत्सव की मन:स्थिति में आ जाते हैं। कार्त्तिक मास वसन्त की प्रस्तावना है। सावन-भादों की झड़ी और आश्विन की प्रखर धूप कार्त्तिक की ठहरी-सी ऊष्मा में बदल जाती है, जिसमें न ग्रीष्म की प्रखरता है, न शीत की जड़ता। कार्त्तिक मास आराधना और अनुष्ठानों की ऋतु है, भगवान नारायण की अर्चना, आत्मिक विकास तथा भौतिक समृद्धि के लिये उनसे आशीर्वाद की याचना का अवसर है।

इस एक महीने में लगभग पन्द्रह त्योहार, पर्व और उत्सव होते हैं, अर्थात् हर दूसरे दिन एक उत्सव। कार्त्तिक की अमावस्या को हम सजाते हैं दीपावली और पूर्णिमा को लगाते हैं राग-रंग भरे मेले। कार्त्तिक पूर्णिमा को भारत की हर नदी के तट पर कई-कई दिनों तक चलने वाले मेले लगा करते हैं, जिनमें जनमानस की आस्था और आनन्द की सामूहिक अभिव्यक्ति होती है। कार्त्तिक की इस आनन्द-योजना में सबसे बड़ी भूमिका है दीपावली की, जो दीपमालिका ही नहीं पर्व-मालिका भी है। दीपावली या दीवाली पाँच पर्वों की एक शृंखला है; धनत्रयोदशी या धनतेरस। नरक चतुर्दशी, दीपावली, अन्नकूट और भ्रातृद्वितीया या भाईदूज, इन पाँच पर्वों में भारत की अनेक सांस्कृतिक परम्पराएं धार्मिक विश्वास, जीवनमूल्य और लोककथायें परस्पर गुँथी हुई हैं। श्रीराम और श्रीकृष्ण जैसे इतिहास-पुरुष भी इस ज्योतिपर्व से जुड़े हुए हैं।

भारतीय संस्कृति एक आनन्दप्रवण अस्तित्वधर्मी संस्कृति है; यही कारण है कि कार्त्तिक की घोर तमसाच्छन्न अमावस्या में हम प्रकाशोत्सव मनाते हैं, उच्चाटन की इस रात्रि में हम शोभा सौन्दर्य और ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री विष्णुप्रिया लक्ष्मी का आह्वान करते हैं और ऐश्वर्य हमें पथभ्रष्ट न करे, इसलिये लक्ष्मी के साथ-साथ बुद्धि और विवेक के देवता गणपति की स्थापना करते हैं।

दीपावली के साथ भारत की राष्ट्रीय-स्मृति के अनेक अंश जुड़े हैं। यह उत्सव कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी, जिसे लोकभाषा में धनतेरस कहते हैं, से प्रारम्भ हो जाता है और पाँच दिनों तक चलता रहता है। मान्यता है कि भगवान विष्णु ने वामनरूप धारण कर इसी समय दैत्यराज बलि से सम्पूर्ण पृथ्वी तीन पगों से नाप कर दान में मांग ली थी और महाराज बलि को पाताल का राज्य प्रदान किया था। कथा सम्भव-सी प्रतीत होती है, क्योंकि कार्तिक मास पूजा-अनुष्ठान, यज्ञयागादि के लिये बड़ा पवित्र समय माना जाता है। हो सकता है, धर्मप्रवण राजा बलि इसी समय वह विशाल यज्ञ कर रहे हों जब वामन बन कर श्रीविष्णु उनके पास पहुँचे थे। बलि ने भगवान से यह वरदान मांगा था कि इस दिन जो प्राणी यमराज के उद्देश्य से दीप जलायेंगे, उन्हें कभी नरक की यातना नहीं भोगनी पड़ेगी।

इस प्रकाशपर्व में लौकिक और अलौकिक तत्त्व नीर-क्षीर भाव से जुड़े हैं। दीपावली की प्रस्तावना होती है धनत्रयोदशी या धनतेरस से। इस दिन कुबेर का पूजन होता है, जो देवताओं के कोषाध्यक्ष, भगवान शंकर के मित्र और धन-सम्पत्ति के देवता हैं। पूजन के पश्चात् कुबेर के निमित्त तेरह दीप जलाये जाते हैं। उत्सव के आयोजन हेतु धन की अपेक्षा तो होती है, अत: उत्सव के प्रारम्भ में ही धन के स्वामी की पूजा-सपर्या बड़ी स्वाभाविक सी प्रतीत होती है। धनतेरस के पश्चात् नरक चतुर्दशी के अवसर पर जन्म और मृत्यु के शासक सूर्यपुत्र यमराज की उपासना की जाती है, जो आत्मतत्त्व के ज्ञाता होने के कारण 'धर्मराज' भी कहे जाते हैं। इनके उद्देश्य से दक्षिणाभिमुखी चौदह दीपक प्रज्वलित किये जाते हैं। पौराणिक आख्यान है कि वामनरूपधारी विष्णु को पृथ्वी-लोक दान करने के पश्चात् पाताल लोक को जाते समय दैत्यराज बलि ने भगवान से यह बलिदान माँगा था कि इस दिन जो प्राणी यमराज के उद्देश्य से दीप जलायेगें, उन्हें कभी नरक की यातना नहीं भोगनी पड़ेगी। नरक चतुर्दशी के ही दिन श्रीकृष्ण ने नरकासुर नाम के आततायी राजा का वध किया था। उसने अनेक राजाओं और राजकुल की स्त्रियों को अपने कारागार में बन्द कर रखा था। नरकासुर का वध कर श्रीकृष्ण ने उन सबको मुक्त किया। इन राजाओं ने अपने-अपने राज्य में जाकर उत्सव किये और दीपावलियाँ सजाईं। श्रीकृष्ण के इस पराक्रम की स्मृति में ही इस चतुर्दशी को नरक चतुर्दशी कहा जाने लगा। नरकासुर अशुभ और अन्धकार का, पापाचरण का प्रतीक है; उसका विनाश प्रकाश की अन्धकार पर और शुभ की अशुभ पर विजय है।

कार्तिक कृष्ण अमावस्या को दीपावली के पर्व का आयोजन होता है। धार्मिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टियों से इसका विशेष महत्त्व है। नगरों से गाँवों तक सर्वत्र इस प्रकाशोत्सव की उजास पहुँचती है। दीपावली सदैव से ही वर्ण और आश्रम की मर्यादाओं से स्वतंत्र रहकर समाज के सभी वर्गों को समान रूप से आनन्दित करती रही है। घर-घर में सजी दीपमालाएं, द्वारों पर बँधे बन्दनवार और आँगन में पूरी गई रंग-बिरंगी अल्पनाएं देवी लक्ष्मी की अगवानी में ऐश्वर्य और आनन्द की भूमिका प्रस्तुत करती हैं। दीपावली के दिन भगवती लक्ष्मी की पूजा का विशेष महत्त्व है। लक्ष्मी श्री-सम्पदा और सौभाग्य की देवी हैं और व्यक्ति के पुरुषार्थ और परिश्रम से ही प्रसन्न होती हैं –'उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी: ।'

गृहस्थजन अपने घर-द्वार सजाकर, लक्ष्मीपूजन का विधान कर सारी रात जागरण कर लक्ष्मी के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं। पुराणों में कहा गया है कि इस अमावस्या की रात्रि को देवी लक्ष्मी पृथ्वी पर विचरण करती हैं, और जो घर उन्हें अपने अनुकूल लगता है, वहाँ रह जाती हैं। प्रश्न है देवी लक्ष्मी की अनुकूलता क्या है? पुराणकर्ताओं की वाणी में वे स्वयं कहता हैं –

"मैं उन्हीं पुरुषों के घर में रहती हूँ, जो स्वरूपवान चरित्रवान, कार्यकुशल और कर्तव्यशील हैं। जो क्षमाशील, देवताओं में भक्ति रखने वाले, संयमी और गुरुजनों की सेवा में निरत रहते हैं, जो विपरीत परिस्थितियों में भी स्वयं पर नियंत्रण रखते हैं, वे ही मुझे प्रिय हैं। इसी प्रकार जो स्त्रियाँ क्षमाशील, गुणवती, सबका भला सोचने वालीं, धैर्यशील और परिश्रमी होती हैं, उनके घरों में मैं नित्य निवास करती हूँ। इसके विपरीत स्वभाववाले स्त्री-पुरुषों के सुसज्जित घरों को भी मैं छोड़कर चली जाती हूँ।" इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मी की कृपा प्राप्त करने के लिये केवल बाहरी अलंकरण ही पर्याप्त नहीं है, मन की निर्मलता और चरित्र का उदात्त होना भी आवश्यक है। मानव-मन में जब शुभसंकल्पों के दीप जलते हैं, तभी भगवती लक्ष्मी का अवतरण होता है।

वस्तुत: भगवती लक्ष्मी परमतत्त्व या ईश्वर की कार्यकारणात्मिका शक्ति हैं, और उनसे अभिन्न हैं। वे ही सृष्टि को उत्पन्न करने वाली परमा प्रकृति हैं। वे ही त्रिगुणात्मिका होने के कारण महासरस्वती, महालक्ष्मी और महाकाली रूप से प्रकट होती हैं, जो क्रमश: उनकी सत्त्वगुणात्मिका, रजोगुणात्मिका और तमोगुणात्मिका अभिव्यक्तियाँ हैं। देवी लक्ष्मी तो भोग और मोक्ष दोनों ही देती हैं, किन्तु सामान्य सांसारिक व्यक्ति

उनसे भोगों की ही याचना करता है। समृद्धि और सम्पन्नता प्राय: व्यक्ति में अनेक विकारों और दोषों का कारण भी बनती है; इसीलिये लक्ष्मी के साथ-साथ विवेक और बुद्धिमत्ता के अधिष्ठाता गणपति की पूजा का भी विधान है। भोग धर्मानुकूल हो, काम धर्म से नियन्त्रित हो, तभी कल्याणकारक होता है। अत: भारतीय संस्कृति इस बात का ध्यान रखती है कि भौतिकता को अध्यात्म का, व्यवहार को परमार्थ का संस्पर्श मिलता रहे।

कार्तिक अमावस्या का तंत्र की दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है। यह 'महानिशा' कहलाती है। प्राचीन काल से बंगाल और आसाम के क्षेत्र परम्परा से शाक्तमतानुयायी रहे हैं और वहाँ शक्ति की उपासना तान्त्रिक पद्धति के अनुसार होती रही है। आज भी बंगाल में कार्तिक अमावस्या को शक्ति के महाकाली-रूप की अर्चना होती है, उनके सौम्य लक्ष्मी-रूप की नहीं। दीपावली का सम्बन्ध भगवान राम की रावण-विजय से भी है। आज के ही दिन श्रीराम लंका पर विजय प्राप्त कर श्रीसीता और लक्ष्मण सहित अयोध्या लौटे थे। उनके आगमन की प्रसन्नता में सारी नगरी दीपमालाओं से सजाई गई थी और नाना प्रकार के उत्सवों का आयोजन हुआ था।

दीपावली के दूसरे दिन कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा को अन्नकूट का अनुष्ठान होता है, जिसका सम्बन्ध भगवान श्रीकृष्ण की गोवर्धनधारण लीला से है। गोकुल में इस दिन इन्द्रदेव के पूजन की परम्परा थी। इन्द्र वर्षा के देवता हैं और गोपालकों को अपने पशुओं के भरण-पोषण के लिये पर्याप्त मात्रा में हरितभूमि और तृणादि मिलते रहें, पीने के लिये पर्याप्त जल हो इसके लिये इन्द्र की कृपा आवश्यक थी। श्रीकृष्ण ने, जो प्रकृति और पर्यावरण के संरक्षण और पोषण को शुष्क और अर्थहीन कर्मकाण्ड की अपेक्षा अधिक महत्त्व देते थे, गोकुलवासियों को समझाया कि न दिखलाई पड़ने वाले इन्द्रदेव के बजाय उस गोवर्धन पर्वत की पूजा करो, जो नित्य तुम्हारे पशुओं के लिये चारा और तुम्हारे लिये फल-फूल प्रदान करता है। तुम्हारे लिये वही साक्षात् देवता है। गोकुलवासियों ने उनकी बात मानकर इन्द्र की पूजा न कर गोवर्धन की पूजा की और उसे ही दूध-दही और नाना प्रकार के व्यंजन श्रद्धापूर्वक अर्पित किये। उस समय भोले-भाले गोकुलवासियों के सन्तोष के लिये स्वयं श्रीकृष्ण गोवर्धन पर्वत के अधिष्ठाता देवता के रूप में प्रकट हुए और उनकी पूजा को स्वीकार किया। इसके बाद अपने अपमान से क्रुद्ध होकर इन्द्र ने तीन दिनों तक निरन्तर घोर वर्षा की और श्रीकृष्ण ने गोकुल को जलप्लावन से बचाने के लिए गोवर्धन पर्वत को अपने बायें हाथ की छिंगुली पर उठा लिया। यही उनकी गोवर्धनधारण-लीला है, जिसकी स्मृति में अन्नकूट का आयोजन होता है। 'अन्नकूट' का अर्थ है – 'अन्न का पर्वत'। गोवर्द्धन की पूजा के लिये ब्रजवासी इतने पकवान ले आये थे कि उनका एक पहाड़-सा बन गया था। आज के दिन गृहस्थजन तरह-तरह के व्यंजन बनाकर श्रीकृष्ण को नैवेद्य अर्पित करते हैं।

कार्तिक कृष्ण द्वितीया को भाई-दूज मनाई जाती है। इसे 'यमद्वितीया' भी कहते हैं, क्योंकि इस त्योहार के साथ यमराज और उनकी बहन यमुना का आख्यान जुड़ा हुआ है। इस दिन बहनें भाइयों को अपने घर बुलाकर या स्वयं उनके यहाँ जाकर उनका तिलक करती हैं और भाई भी उनका सत्कार कर उन्हें भेंटस्वरूप कुछ उपहार देते हैं। भाई के कल्याण के लिये इस दिन बहनें अनेक मंगल-विधान करती हैं तथा उनके कल्याण और दीर्घ जीवन के लिये ईश्वर से प्रार्थना करती हैं। मथुरा प्रदेश में इस दिन बहन का भाई के साथ यमुना में स्नान करना बहुत शुभ माना जाता है। भाई-दूज के साथ जुड़ा पौराणिक आख्यान इस प्रकार है –

सूर्य की पत्नी संज्ञा से सूर्य की दो सन्तानें थीं – पुत्र यम और पुत्री यमुना। यम और यमुना में परस्पर बहुत स्नेह था। यमुना अपने भाई यमराज के यहाँ प्राय: जातीं किन्तु अपनी व्यस्तता के कारण यमराज यमुना के पास नहीं पहुँच पाते। एक दिन समय निकाल कर यमराज अपनी बहन यमुना के यहाँ पहुँच गये। यमुना बहुत आनन्दित हुईं। उन्होंने अपने बड़े भाई का सत्कार किया, उनका मंगल-तिलक किया और उन्हें भोजन कराया। चलते समय यमराज ने यमुना से अपना मनोवांछित वर मांगने को कहा। यमुना स्वभाव से परोपकारिणी थीं; उन्होंने यमराज से कहा कि 'यदि आप प्रसन्न हैं, तो प्रति वर्ष इस दिन मेरे यहाँ आकर मेरा आतिथ्य स्वीकार किया करें। यही नहीं, जो भी भाई इस दिन अपनी बहन के यहाँ जाकर मंगल-तिलक करवाये, उसकी सभी कामनाएं पूर्ण हों और उसे आपका भय न हो'।

इस पौराणिक आख्यान के अतिरिक्त भाईदूज से जुड़ी अनेक लोक-परम्पराएं और मान्यताएं हैं। आज के दिन बहनें देवताओं से, विशेषरूप से यमराज से, अपने भाई के सुख-सौभाग्य और लम्बे जीवन के लिये प्रार्थना करती हैं। भाई भी बहिन की रक्षा का वचन देते हैं। पूजन करते समय अनेक कथाएँ भी कही सुनी जाती हैं, जिनमें बहन के द्वारा भाई की जीवनरक्षा और कल्याण के लिये किये गये प्रयासों का वर्णन होता है।

इस स्नेह-अनुष्ठान का उद्देश्य नये-नये बनते सम्बन्धों के बीच शैशव से चले आ रहे एक स्नेह-सम्बन्ध के महत्त्व की स्मृति दिलाना ही है। भाई और बहन का यह सम्बन्ध एक ऐसा सम्बन्ध है, जो जन्म से ही प्रारम्भ हो जाता है और आँसुओं और किलकारियों के बीच पलता हुआ, किशोरावस्था और यौवन की ड्योढ़ियाँ लांघता जीवन के उत्तरार्द्ध में एक गम्भीर ठहरा हुआ सा अनुबन्ध बन जाता है।

पाँच दिनों की यह उत्सव परम्परा भारतीय संस्कृति की सभी विशेषताएं संजोए हुए हैं। यह मनुष्य की धर्मानुकूल अर्थ और काम पुरुषार्थों की सिद्धि के लिये की गई चेष्टा है, जिसमें सफलता के लिये वह ईश्वर से आशीर्वाद चाहता है। श्रीराम, श्रीकृष्ण, लक्ष्मी, काली, गणेश, कुबेर और यम परमसत्ता के ये सभी रूप इन पर्वों और उत्सवों के केन्द्र हैं, जो अपनी उपस्थिति से जहाँ एक ओर इन लोकोत्सवों को गरिमा प्रदान करते हैं, वहीं दूसरी ओर मानवीय चेतना से सर्वव्यापक पराचेतना का सम्बन्ध भी रेखांकित करते हैं। भारतीय संस्कृति इस बात के लिये सदैव सजग और सचेष्ट रही है कि मनुष्य सहज मानवीय प्रवृत्तियों के अनुकूल जीवन जीते हुए भी उस परमात्मा को न भूले जिसकी प्राप्ति ही अन्तत: मानवीय जीवन का चरम लक्ष्य है।

भारतीय मन 'द्युति' या प्रकाश से घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ है क्योंकि प्रकाश 'देवता' है, चेतना है, ज्ञान है। कहते हैं कार्त्तिक अमावस्या वर्ष की सबसे अन्धेरी रात होती है। इस दिन प्रकाशोत्सव मनाना अपने आप में एक गहरा जीवन-दर्शन समेटे है। अंधेरी रात में जगमगाता मिट्टी का छोटा सा दिया प्रतीक है मनुष्य की अदम्य जिजीविषा का, उसके संकल्प का और उसकी आस्था का जो कहती है – '**तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय**'। ○○○

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में भारत का आर्थिक दृष्टिकोण कैसा हो?

बी.एल. सोनेकर

सहा. प्राध्यापक, अर्थशास्त्र अध्ययनशाला, पं. रविशंकर शुक्ल विश्वविद्यालय रायपुर (छ.ग.)

स्वामी विवेकानन्द आधुनिक भारत के महान धार्मिक नेता एवं संस्कृति के उन्नायक थे। उनकी बौद्धिक प्रतिभा अतुलनीय थी। आज जब सारा संसार स्वामी विवेकानन्द की सार्ध शती समारोह मना रहा है, तो वर्तमान भारत में व्याप्त समस्त समस्याओं का समाधान स्वामी विवेकानन्द के वैचारिक संदर्भ में देखना आवश्यक हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द की आध्यात्मिक प्रतिभा किसी से कम न थी। मेरी दृष्टि में उनकी आध्यात्मिक प्रतिभा के सामने आचार्य शंकर के सिवाय कोई सानी नहीं ठहरता। उन्होंने मानव जीवन में व्याप्त व्यावहारिक समस्याओं का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। उनकी प्रतिभाशाली दृष्टि से मानव-जीवन के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पक्ष का बच पाना असम्भव है। भारत के दीन-दरिद्र गरीब मानवों को देखकर स्वामीजी का हृदय रो पड़ता था। अपने देशवासियों के प्रति उनका प्रेम और सहानुभूति केवल गहरी ही नहीं बल्कि अपूर्व थी। भारतीय असहायों एवं गरीबों की निर्धनता देखकर वे इन आर्थिक प्रश्नों पर सतत चिन्तन के लिये बाध्य हो गये।

अर्थशास्त्र के सन्दर्भ में इन महान हिन्दू संन्यासी के आधुनिक विज्ञान एवं इंजिनियरिंग के प्रति दृष्टिकोण को समझना होगा। निम्नलिखित उद्धरण उनके इस दृष्टिकोण को समझाने में सहायक हैं–

"आज हमारे राष्ट्र को आवश्यकता है कार्य में क्षिप्रता की, ऐसी प्रतिभा की जो वैज्ञानिक अविष्कार कर सके। इसलिये मेरी इच्छा है कि 'क' इलेक्ट्रीशियन बने, भले ही वह उसमें सफल ना हो सके, पर मुझे इस बात पर प्रसन्नता होगी कि उसने बड़ा बनने और अपने देश के लिये उपयोगी बनने का प्रयत्न किया है।"

"मैं तो ऐसा सोचता हूँ कि आधुनिक विज्ञान से अपरिचित एक नीम हकीम के हाथों चंगा होने की अपेक्षा एक विज्ञान परिचित चिकित्सक के हाथों मरना अधिक अच्छा है।"

यूरोप के मार्ग से अमेरिका जाते समय स्वामीजी ने अपने रोचक संस्मरणों को 'परिव्राजक' नाम पुस्तक में निबद्ध किया है। इन संस्मरणों में ऐसे रोचक प्रसंग हैं जिनसे स्वामीजी के मशीन यंत्र आदि के प्रति दृष्टिकोण का पता चलता है। इस प्रकार के कतिपय विचारों को हम नीचे लिपिबद्ध कर रहे हैं –

"जहाज का अविष्कार किसने किया है, किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं। तात्पर्य यह है कि यह भी उन सभी मशीनों की भाँति जो मनुष्यों के लिये अनिवार्य है, सामूहिक श्रम की उपज है। इस सामूहिक श्रम के बिना क्षण भर के लिये भी मनुष्यों का काम नहीं चल सकता और कारखानों की तरह-तरह की मशीनें इसी परिणाम एवं प्रयास के योग से जन्मी हैं। जगन्नाथ के रथ तक, करघे से लेकर कारखानों की

भीमकाय मशीनों तक, सब जगह चक्कों को ले लो कितने अनवार्य है वे । चरमराती बैलगाड़ी से लेकर जगन्नाथ के रथ तक, करघे से लेकर कारखानों की भीमकाय मशीनों तक सब जगह चक्कों की उपयोगिता है ।''

वाणिज्य सम्बन्धी विचार

शायद भविष्य में होने वाले पूँजीवाद, आर्थिक उदारीकरण, भूमण्डलीकरण के प्रभाव से स्वामी विवेकानन्द पूरी तरह परिचित थे । वे यह भलीभाँति जानते थे कि समाज में आदिकाल से ही व्यापार का प्रभाव अर्थव्यवस्था पर अत्यधिक रहा है । नौकरियाँ अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होने पर अपना अस्तित्व खोती रही हैं, लेकिन व्यापार में हमेशा ही अपार संभावनायें रही हैं । स्वामीजी बचपन से ही स्वतंत्र प्रवृत्ति के रहे थे, उन्हें तो गुलामी शब्द से ही घृणा थी, इसीलिये वे स्वतंत्र व्यापार के सशक्त पक्षधर रहे हैं ।

१८९५ में वे न्यूयार्क से एक पत्र में लिखते हैं ''डे बाबू से कहना कि इंग्लैण्ड में और अमेरिका में मूंग एवं अरहर दाल का अच्छा खासा व्यापार चल सकता है । यदि बनी हुई दाल उसके सामने सही ढंग से रखी जाय, तो उसका काफी चलन हो जायेगा । यदि दाल के छोटे-छोटे पुड़े बना दिये जायँ एवं उन पर दाल बनाने की विधि लिख दी जाय और यदि इन पुड़ों को ग्राहकों के घर भेजकर व्यापार करने की एक दुकान खोल दी जाय, तो व्यापार अच्छा खासा चलाया जा सकता है । यदि कोई व्यापारिक संघ बना ले एवं भारत से इस हेतु विक्रयार्थ वस्तुएँ ले आये, तो यह व्यापार उत्तम रीति से अच्छा खासा चलाया जा सकता है ।''

शरतचन्द्र चक्रवर्ती स्वामीजी के शिष्य थे । वे लड़कों को ट्यूशन पढ़ाया करते थे । स्वामीजी ने उन्हें किसी व्यापार में लग जाने को प्रेरित किया । स्वामीजी ने उन्हें सलाह दी थी कि यदि तुम किसी सांसारिक मनुष्य की भाँति रहना चाहते हो और पैसे कमाना चाहते हो, तो अमेरिका चले जाओ मैं तुम्हें आवश्यक निर्देश दे दूँगा । तुम देखोगे कि पाँच साल में ही तुमने काफी पैसा कमा लिया है ।'' इस पर शिष्य ने पूछा, ''मैं वहाँ किस चीज का व्यापार करूँगा, मेरे पास तो पैसा ही नहीं? पैसा कहाँ से आयेगा ? इस पर स्वामीजी ने कहा, ''क्या मूर्खता की बातें करते हो? तुममें अदम्य शक्ति भरी पड़ी है । केवल मैं कुछ नहीं हूँ करते रहने से तुम सचमुच निर्बल हो गये हो । केवल तुम्हारी ही बात नहीं है, बल्कि सारी हिन्दू जाति ही ऐसी हो गयी है । एक बार सारा विश्व भ्रमण करके तो देखो, देखोगे कि दूसरे देशों का जीवन-प्रवाह कितनी उदारता से बह रहा है । और तुम लोग क्या कर रहे हो? इतना पढ़-लिख लेने के बाद भी ''नौकरी दो, मुझे नौकरी दो, चिल्लाते हुए दूसरों का दवरवाजा खटखटाते रहते हो ।''

उपरोक्त वार्तालाप के दौरान स्वामीजी ने यह भी कहा था कि ''यदि तुम्हारे पास पैसा नहीं है, तो खलासी का काम करते हुए विदेशों में चले जाओ । भारत में बने सामानों, कपड़े, तौलिये की विदेशों में काफी माँग है । वहाँ की सड़कों में भारतीय सामानों की फेरियाँ लगाने से अपने व्यापार की शुरुआत करो । तुम देखोगे कि विदेशी बाजारों में आज भारतीय चीजों की कितनी माँग है । मुझे अमेरिका में हुगली जिले के कुछ मुसलमान मिले, जो आज इसी तरह अमेरिका में भारतीय चीजों की फेरी लगा-लगा कर बड़े धनी बन गये हैं । तुममें क्या उन लोगों से भी कम बुद्धि है? उदाहरण के लिये सुन्दर बनारसी साड़ियों को ले लो । संसार के अन्य किसी भी भाग में उस तरह की सुन्दर साड़ियाँ नहीं बनतीं, उन साड़ियों के गाऊन बना कर बेचो । फिर देखो तुम कितना कमाते हो ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह पूर्णतया स्पष्ट है कि यद्यपि स्वामीजी संन्यासी थे, तथापि उन्होंने जीवन के व्यावहारिक पक्षों की उपेक्षा नहीं की । विज्ञान एवं इंजीनियरिंग के प्रति उनमें प्रबल प्रगतिशील विचारधारा दिखाई पड़ती है । 'परिव्राजक' के निम्न उद्धरण इस कथन की पुष्टि करते हैं –

''प्राचीन काल से मानवीय सभ्यता को उसके अधुनातन स्वरूप में लाने में वाणिज्य की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण रही है और भारतीय वाणिज्य तो वैश्विक अर्थव्यवस्था में सदैव सिरमौर रहा है । स्मरणातीत काल से ही भारत उद्योग एवं वाणिज्य के क्षेत्र में विश्व के अन्य सभी देशों की अपेक्षा अग्रणी रहता आया है । एक ही शताब्दी पूर्व की बात है, सूती वस्त्र, कपास, जूट, नील, लाख, चाँवल, हीरे, मोती आदि सम्बन्धी विश्व की समस्त आवश्यकता एक मात्र भारत ही पूरी कर सकता था । भारत के समान उत्कृष्ट कोटि का रेशमी और किनखाब जैसे उनी वस्त्र बनाने वाला देश विश्व में कोई भी नहीं था । फिर भारत ही तरह-तरह के मसाले बनाने वाला देश रहा है । यहाँ के लौंग, इलायची, गोलमिर्च, जायफल और जावित्री विश्व प्रसिद्ध रहे हैं । अत: स्वभावत: बहुत पुरातन काल से ही जो भी देश किसी युग में सभ्यता के आलोक से आलोकित हुआ, उसे सब सामाग्रियों के लिये भारत पर ही निर्भर रहना पड़ा ।''

''हे भारत के श्रमिको ! यह तुम्हारे ही नितान्त नीरव श्रम का फल है कि बालि, फारस सिकदरिया, यूनान, रोम,

वेनिस, जिनोवा, बगदाद, समरकंद, स्पेन, पुर्तगाल, फ्रांस, डेनमार्क, हालैण्ड और इंग्लैड, क्रमश: प्रभुत्व के शिखर पर पहुँचे हैं ।'''

गरीबी एक अभिशाप है

स्वामीजी गरीबी को दुर्बलता का चिह्न मानते थे । वे गरीबी को आध्यात्मिक उन्नति में बाधक मानते थे । वे कहते हैं – ''भारत में सारी विपत्तियों की जड़ गरीबी है ।'' इसलिये स्वामीजी का गरीबी उन्मूलन पर विशेष जोर है । वे हमेशा से ही कहा करते थे कि खाली पेटवालों को धर्म की शिक्षा नहीं दी जा सकती है ।

''अपने धर्म के क्रिया-अनुष्ठानों को फिलहाल ताक पर रख दो। पहले जीवन संग्राम के लिये तैयारी करो । भूखे पेट धर्म की साधना नहीं हो सकती ।''

''हममें से जो लोग अभी उच्चतम सत्य के लायक नहीं हुए हैं, उनमें से अधिकांश के लिये, अपनी आवश्यकता के अनुरूप, एक तरह से विषरहित हुआ भौतिकवाद वरदान सिद्ध होगा ।''

रजोगुण का प्रसार आवश्यक है

सतोगुण की महिमा एवं इसके आख्यान ने भारतीय जन-मानस को संसार से पलायनवादी बना दिया है, अत: स्वामीजी जनसाधारण में रजोगुणी वृत्ति के प्रसार को अति आवश्यक मानते हैं । वे कहते हैं, ''असल पाप तो आलस्य है, यह हमारी गरीबी का मुख्य कारण है ।''

''किन्तु क्या यह सब (जीवन की आवश्यकताओं को प्राप्त करना, उद्योग-वाणिज्य एवं व्यापार को बढ़ावा देना) कभी संभव हो सकता है कि मनुष्यों में यथार्थ रजोगुण ना जागे? मैंने सारे भारत का भ्रमण किया है, पर मुझे रजस् की अभिव्यक्ति कहीं भी नहीं मिली । सब ओर मैंने तमस् ही तमस् देखा । सारे लोग तमोगुण से घिरे पड़े हैं, केवल संन्यासियों में ही मैंने सत्त्व एवं रजस का प्रकाश देखा ।''

''हर व्यक्ति को बताओ कि उसमें अनन्त शक्ति भरी पड़ी है । वह अक्षय आनन्द का भागीदार है । इस प्रकार लोगों में राजसिक भाव जागृत करो । उन्हें जीवन संग्राम के योग्य बनाओ, उसके बाद उनसे मुक्ति के सम्बन्ध में बातें करो ।''

नवीन उद्योगों एवं व्यवसायों का प्रसार अति आवश्यक है

गरीबी की समस्या हल करने के लिये स्वामीजी ने नवीन व्यवसाय इंजनीयरिंग एवं विज्ञान के उपयोग का प्रबल समर्थन किया है । वे कहते है, '' हम मूर्खों के समान बाह्य सभ्यता पर उंगली उठाते हैं । उनके भौतिकवाद की शक्ति को अपनी पलायनवादी संतोषी प्रवृत्ति के सामने बौना सिद्ध करने का प्रयास करते हैं । उंगली उठायें क्यों नहीं, क्योंकि अंगूर खट्टे हैं न ! हम हमारी दुर्बलता को स्वीकार नहीं करना चाहते । यही नहीं यह भी आवश्यक है कि हम आवश्यकता से अधिक एवं दूसरी वस्तुओं का उपयोग करें, जिससे गरीबों के लिये नये व्यवसाय खुलें । भौतिक सभ्यता ही क्यों ऐशोआराम भी जरूरी हैं ताकि गरीबों को काम मिल सकें ।''

स्वामीजी यह मानते थे कि भारत पुन: विश्व में आर्थिक महाशक्ति बन सकता है जैसा कि वह प्राचीन काल में था और सोने की चिड़िया कहलाता था । भारतीयों की गरीबी और दुर्बलता का मूल कारण स्वामीजी ने आलस्य को माना है । भारत में प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में हैं । भारत में लोग आत्मा की शक्ति में विश्वास करते हैं, जबकि पश्चिम में लोग भुजाओं की शक्ति में । भारत में चरित्रबल पर विशेष जोर दिया जाता है, पश्चिमी सभ्यता में चरित्र बल से धन बल श्रेष्ठ माना गया है ।

अत: मेरे विचार से कोई ऐसा कारण नहीं है कि हम स्वामीजी के सपनों का आर्थिक शक्ति-सम्पन्न, चरित्रवान भारत पुन: न बना सकें, आवश्यकता उसी संकल्प की है, जो स्वामीजी बार-बार कहा करते थे – **''उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्''** – उठो जागो और लक्ष्य की प्राप्ति तक मत रूको । OOO

दे
जिस

विवेकानन्द रथ का छत्तीसगढ़ प्रवास

एक रथ-यात्री की डायरी से

०६.०१.२०१४ – भिलाई नगर के विवेकानन्द विश्वविद्यालय और विभिन्न स्कूल-कॉलेजों में विवेकानन्द रथ का भ्रमण

श्रीरामकृष्ण सेवा मंडल, सेक्टर-७ से श्री एल. टी. शेरपा, अधिशासी निदेशक (पी.एंड.ए.), भिलाई इस्पात संयंत्र द्वारा रथ में चढ़कर भिलाई भ्रमण की घोषणा की गई। उनके द्वारा हरी झंडी दिखाते ही रथ नगर-भ्रमण के लिये निकल पड़ा।

रथ की झाँकी बड़ी सुन्दर थी। १० मोटर साईकिलों में भारत का झंडा लगाए हुए विद्यार्थी सबसे आगे रथ का नेतृत्व कर रहे थे। सामने ध्वजा पताका लिए चल रहे थे श्री एल. टी. शेरपा और कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय के एन.सी.सी. केडेट मार्च पास्ट कर रहे थे। उनके पीछे थे माँ सारदा पब्लिक स्कूल, सेक्टर-९ के विद्यार्थी, जो स्वामी विवेकानन्द के पोस्टर और सुभाषित लिये हुये थे और स्वामी विवेकानन्द के जय-जयकार के नारे लगा रहे थे। रथ सबका मन लुभाता हुआ और सबका अभिवादन स्वीकार करता हुआ मंथर गति से आगे बढ़ रहा था ।

सबसे पहले रथ **कल्याण स्नातकोत्तर महाविद्यालय** में पहुँचा, जहाँ के प्राचार्य ने अपने महाविद्यालय परिवार के साथ रथ का भव्य स्वागत किया। प्राचार्य, शिक्षक-शिक्षिकाओं तथा छात्र-छात्राओं ने मिलकर रथ में विद्यमान स्वामी विवेकानन्द का पुष्पहार से स्वागत किया। तत्पश्चात् रथ के साथ चल रहे श्रीमत् स्वामी प्रपत्त्यानन्दजी महाराज का स्तोत्र उच्चारण के साथ पुष्पहार से स्वागत किया गया।

उसके बाद रथ भिलाई **नायरसमाज, म उ.मा.शाला, सेक्टर-८** पँहुचा। बच्चे स्कूल के सामने सड़क के दोनों किनारे रथ का स्वागत करने के लिये कतारबद्ध खड़े थे। वहाँ के प्राचार्य, शिक्षक-शिक्षिकाओं तथा छात्र-छात्राओं ने मिलकर रथ पर स्वामी विवेकानन्द का पुष्पमाला से स्वागत किया।

तत्पश्चात् रथ **छत्तीसगढ़ स्वामी विवेकानन्द तकनीकि विश्वविद्यालय**, सेक्टर-८ पहुँचा। वहाँ के कुलपति जी ने कुलसचिव जी, प्राध्यापकों, छात्र-छात्राओं और सभी सहयोगियों द्वारा रथ का स्वागत किया। विश्वविद्यालय स्थित स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द और अन्य लोगों द्वारा फूल तथा माल्यार्पण हुआ। तदनन्तर रथ का स्वागत भिलाई महिला महाविद्यालय में किया गया।

उसके बाद स्वामी विवेकानन्द जी का रथ स्वामी **स्वरूपानन्द कॉलेज,** भिलाई में पहुँचा, जहाँ उस कॉलेज परिसर में बड़ा भव्य स्वागत किया गया। वहाँ दोनों स्कूल और कॉलेज के छात्र-छात्रायें कई हजार की संख्या में उपस्थित थे। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने बच्चों को 'जय जगत' और 'जय विवेकानन्द' गीत गवाया, जिससे परिसर गूँज उठा। उसके बाद उन्होंने रथ के उद्देश्य और बच्चों के चरित्र-निर्माण पर व्याख्यान दिया। बच्चों ने बहुत ही मनोहारी सांस्कृतिक कार्यक्रम भी प्रस्तुत किये। तत्पश्चात् **आमदी विद्यानिकेतन, डी. ए. वी. स्कूल** होते हुए सेंट्रल एवेन्यू पहुँचा। सेन्ट्रल एवेन्यू पर सेक्टर-८, सेक्टर-७, सेक्टर-६ तथा सेक्टर-२ से **एस.एन.जी विद्यानिकेतन** सेक्टर-४ से **ई.मी.उ.मा.शाला,** सेक्टर-१० से **माँ सारदा पब्लिक स्कूल**, सेक्टर–९ में जाकर रथ को विश्राम दिया गया। स्कूल के विद्यार्थी सड़क की बायीं ओर कतार में खड़े हुए थे और स्वामी विवेकानन्द के जय-जयकार के नारे लगा रहे थे। सभी जगह प्राचार्य, शिक्षक-शिक्षिकाओं तथा छात्र-छात्राओं ने मिलकर रथ पर स्वामी विवेकानन्द का सुमन-माला से स्वागत किया और विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किए।

संध्या ६.०० से ९.३० बजे तक भिलाई के सिविक सेंटर के प्रतिष्ठित सभागार **कलामन्दिर** में आमसभा का आयोजन किया गया। ५०० लोगों का बैठने वाला यह सभागार पूरा भरा हुआ था। वक्ता के रूप में मंच पर विद्यमान थे – प्रोफेसर डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, अध्यक्ष, छत्तीसगढ़ निजी विश्वविद्यालय विनियामक आयोग और सचिव विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर; श्रीमत् स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी महाराज, सम्पादक 'विवेक-ज्योति', रायपुर; श्रीमत् स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज, सचिव, रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर तथा कार्यकारी सी.ई.ओ.डॉ.सुबोध हिरण जी। हृदयरोग शल्य चिकित्सक, मेन हास्पिटल, सेक्टर-९, भिलाई इस्पात संयंत्र ने मुख्य अतिथि की आसन्दी से 'स्वामी विवेकानन्द के जीवन और सन्देश की वर्तमान समय में प्रासंगिकता' पर अपने सारगर्भित विचार लोगों के समक्ष रखे। भिलाई के चर्चित भजन-गायकों ने भजन गाये तथा विभिन्न स्कूल-कॉलेजों के बच्चों ने नृत्य और स्वामी विवेकानन्द पर आधारित नाटक प्रस्तुत कि। राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

इस पूरे कार्यक्रम के लिये श्री हिमाचल मढ़रिया, श्रीमती शोभा शर्मा, श्री पी.के. शर्मा, श्री नरेन्द्र बंछोर, श्री पंकज कश्यप, संघमित्रा तालुकदार तथा माँ सारदा पब्लिक स्कूल की प्राचार्या, शिक्षक-शिक्षिकाओं, छात्र-छात्राओं तथा

उनके सहयोगियों का अनन्य सहयोग सराहनीय रहा ।

०७.०१.२०१४ को दुर्ग शहर के विभिन्न शिक्षण-संस्थानों में स्वामी विवेकानन्द-रथ का भ्रमण

स्वामी विवेकानन्द रथ श्रीरामकृष्ण सेवा मण्डल, सेक्टर-७ से प्रस्थान कर दुर्ग के **शासकीय ताम्रस्कर महाविद्यालय** में पहुँचा । कालेज के बच्चे कतार बद्ध खड़े थे । प्राचार्य, शिक्षक-शिक्षिकायें तथा बच्चों ने पुष्पहार से रथ पर स्वामी विवेकानन्द का स्वागत किया और स्वामी प्रपत्त्यानन्दजी महाराज ने रथ पर से ही बच्चों के लिये स्वामी विवेकानन्द का चरित्र-निर्माणकारी सन्देश दिया ।

इसके बाद रथ **भिलाई इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी** पहुँचा । वहाँ के डायरेक्टर ने पुष्पहार से रथ पर स्वामी विवेकानन्द का स्वागत किया और स्वामी प्रपत्त्यानन्दजी महाराज ने वहाँ के सभागार में एकत्रित बच्चों, शिक्षक-शिक्षिकाओं को स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी विचारों से अवगत कराया

तत्पश्चात् रथ मालवीय नगर चौक पहुँचा । वहाँ दीपक नगर, **नक्सल प्रभावित पुनर्वास केन्द्र, अनुसूचित जनजाति छात्रावास, माता रुक्मिणी सेवा संस्थान, सोधी हायर सेकेन्ड्री स्कूल, गवर्नमेन्ट हायर सेकेन्ड्री स्कूल**, विभिन्न विद्यालयों के बच्चे-बच्चियाँ कतारबद्ध होकर स्वामी विवेकानन्द के जय-जयकार के नारे लगा रहे थे । पुष्पहार और गाजे-बाजे के साथ लोक नृत्य से सभी ने रथ का स्वागत किया और यह सिलसिला मेनोनाईट चर्च तक चला । रथ मेनोनाईट चर्च से हिन्दी भवन होता हुआ **आदर्श कन्या उ.मा. शाला** पहुँचा । यहाँ दुर्ग के बहुत से स्कूलों के छात्र-छात्राएँ, शिक्षक-शिक्षिकाएँ तथा प्राचार्य एकत्रित थे, वहाँ भी सबने मिलकर रथ का स्वागत किया और स्वामी प्रपत्त्यानन्दजी महाराज ने बच्चों को राष्ट्रगीत गवाकर पहले राष्ट्रीय भावना से भर दिया और उसके पश्चात् स्वामी विवेकानन्द के राष्ट्रभक्ति और चरित्र निर्माणकारी शिक्षा से उनके दिलोदिमाग को राष्ट्रमय कर दिया।

उसके बाद रथ **सुराना कॉलेज, विश्वदीप हायर सेकेन्ड्री क्रिश्चियन कॉलेज, सांई मंदिर,** होते हुये **गवर्नमेन्ट गर्ल्स कॉलेज** पहुँचा । वहाँ भी सबने रथ का स्वागत किया और सभागार में एकत्रित छात्राओं तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं को स्वामी प्रपत्तयानन्दजी महाराज ने स्वामी विवेकानन्द के नारी शिक्षा से सम्बन्धित विचारों से अवगत कराया और उन्हें याद दिलाया कि उनके आदर्श सीता, सावित्री, दमयन्ती, गार्गी और मैत्रेयी हैं । स्वामी विवेकानन्द जी विज्ञान और अध्यात्म दोनों का विकास चाहते थे । अत: छात्राएँ वैज्ञानिकता अपनाने के साथ-साथ नैतिकता और मानवीय गुणों का भी अपने जीवन में विकास करें । भारतीय संस्कृति को छोड़कर केवल पश्चिम का अन्धानुकरण हमें पतन की गर्त में ले जायेगा । इसलिये उन्होंने छात्राओं तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं से आह्वान किया कि वे पवित्रता को अपने जीवन का अटूट अंग बनाएँ और शिक्षित होकर अपने घर-परिवार, समाज तथा देश को उन्नत बनाएँ ।

इसके बाद रथ **श्रीशंकराचार्य इंजीनियरिंग कॉलेज, जुनवानी** पहुँचा । वहाँ के चेयरमेन श्री आई.पी. मिश्रा, डायरेक्टर श्री पी.बी. देशमुख तथा छात्र-छात्राओं ने रथ का स्वागत किया । श्री आई.पी. मिश्रा ने स्वागत भाषण दिया तथा स्वामी प्रपत्त्यानन्दजी महाराज ने सबको स्वामी विवेकानन्द के ओजस्वी विचारों से अवगत कराया ।

फिर रथ **ग्राम ननकट्ठी** पहुँचा । स्वामी विवेकानन्द की जय-जयकार के साथ गाँववालों ने रथ का स्वागत किया और रथ को अपने गाँव में पाकर सभी ग्रामवासियों ने धन्यता का अनुभव किया ।

रथ वापस भिलाई में **कुर्मी भवन** पहुँचा । वहाँ के अध्यक्ष और पदाधिकारियों ने रथ का स्वागत किया तथा सभागार में स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी महाराज ने सभा को सम्बोधित करते हुए श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द जी की अद्भुत कृपा को याद दिलाया तथा उनके विचारों से अवगत कराया ।

इस कार्यक्रम के संयोजन में श्री पंकज कश्यप, श्रीमती तनुजा कश्यप, श्रीमती अचला अग्रवाल, श्रीमती शोभा शर्मा, श्री पी.के शर्मा, श्री नरेन्द्र बंछोर, श्री हिमाचल मढ़रिया और अन्य सहयोगियों का विशेष योगदान रहा ।''

दुर्ग के ननकट्ठी ग्राम में रथ के विषय में श्री पंकज कश्यप लिखते हैं, ''**स्वामी जी ने पूर्ण की ग्रामवासियों की हार्दिक इच्छा** । ४ जनवरी को जर्जर अवस्था और तकनीकि खराबियों के कारण रथ ननकट्ठी ग्राम में नहीं जा सका था, जिससे ग्रामवासी बड़े दुखित थे । ७ जनवरी को दुर्ग-भ्रमण सम्पन्न कर सन्ध्या ६ बजे रथ ननकट्ठी ग्राम में पहुँचा, जहाँ उत्साही ग्रामिणों ने स्वामीजी की आरती उतारी और पुष्पहार से स्वागत किया । रथ को अपने गाँव में पाकर ग्रामिणों की आँखें नम हो गयीं ।''

विभिन्न अखबारों ने बड़े अच्छे विवरण और फोटो के साथ समाचार पत्रों में रथ-भ्रमण की सूचनायें प्रकाशित की। लोकल चैनलों और दूरदर्शन ने महत्वपूर्ण रूप से रथ के समाचार को प्रसारित किया ।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द विश्वविद्यालय, कोलकाता, ने ४ जुलाई, २०१४ को अपना ९वाँ संस्थापना दिवस तथा दीक्षान्त समारोह मनाया। विशेष अतिथि के रूप में श्रीमती स्मृति जुबिन इरानी, मानव संसाधन विकास मंत्री, केन्द्र सरकार, ने दीक्षान्त भाषण दिया। रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव एवं विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रीमत् स्वामी सुहितानन्दजी ने कार्यक्रम की अध्यक्षता की। उन्होंने विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों बेलूड़, नरेन्द्रपुर एवं राँची के १२३ विद्यार्थियों को स्नातक, डिप्लोमा की उपाधि तथा प्रमाण-पत्र प्रदान किये।

रामकृष्ण मठ, चैन्नई के विवेकानन्द इल्लम् में नव-निर्मित 'विवेकानन्द सांस्कृतिक भवन' का उद्घाटन तमिलनाडु की मुख्यमंत्री सुश्री जयललिता ने ८ जुलाई, २०१४ को वीडिओ कॉन्फ्रन्सिंग के द्वारा किया।

रामकृष्ण मठ, त्रिपुरा ने २९ जून, २०१४ को रक्तदान शिविर का आयोजन किया। शिविर का उद्घाटन त्रिपुरा के मुख्यमंत्री माननीय श्री मणिक सरकार के द्वारा हुआ और इसमें ७६ लोगों ने रक्तदान दिया।

रामकृष्ण मठ, पुरी ने रथ यात्रा के उपलक्ष्य में २९ जून, २०१४ से ७ जुलाई, २०१४ तक एक चिकित्सा शिविर का आयोजन किया, जिसमें ७०० रोगियों को चिकित्सा प्रदान की गई।

रामकृष्ण मठ, बागबाजार कोलकाता में 'माँ सारदा व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्र' का उद्घाटन रामकृष्ण मठ एवं रामकृष्ण मिशन के महासचिव श्रीमत् स्वामी सुहितानन्दजी महाराज ने ११ जुलाई, २०१४ को किया।

रामकृष्ण मठ, नागपुर के सचल पुस्तक-विक्रय केन्द्र 'ज्ञानवाहिनी' का शुभारम्भ रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ उपाध्यक्ष पूज्य स्वामी स्मरणानन्दजी महाराज के कर-कमलों द्वारा हरी झंडी दिखाकर १७ जुलाई, २०१४ को हुआ। पूज्यपाद महाराज ने २० जुलाई को एक सी.डी का विमोचन किया, जिसमें रामकृष्ठ मठ द्वारा प्रकाशित मराठी पत्रिका 'जीवन विकास' के गत ५६ वर्षों के लेखों का संग्रह है।

राहत कार्य

अतिवृष्टि के कारण उड़ीसा राज्य स्थित जाजपुर जिले के कुछ क्षेत्रों में भारी हानि पहुँची है। इन क्षेत्रों में मिट्टी से बने बहुत से घर टूट गये हैं और कृषि भूमि को भी काफी नुकसान पहुँचा है। **रामकृष्ण मिशन आश्रम, कोठार (उड़ीसा)** के द्वारा इन क्षतिग्रस्त क्षेत्रों में तुरन्त प्राथमिक राहत कार्य आरम्भ किया गया। इसमें जाजपुर जिले के २० वार्डों के क्षतिग्रस्त लोगों को ५००० कि.ग्रा. चिउड़ा, २५०० कि.ग्रा. सत्तू, १३०० कि.ग्रा. गुड़, २५०० कि.ग्रा. नमक, ५१०४ बिस्कुट के पॅकेट और २५,२०० माचिस का वितरण किया गया।

उत्तराखण्ड स्थित चमोली जिले में शुरु किये गए बाढ़ राहत कार्य में २७ जून, २०१४ से ९ जुलाई, २०१४ तक ३२ गाँवों के लगभग २१५२ परिवारों को **रामकृष्ण मिशन आश्रम, देहरादून** द्वारा सहायता प्रदान की गई। इसमें ५३,८०० कि.ग्रा., १०,७६० कि.ग्रा. दाल, १०,७६० लीटर खाद्य तेल, ४३०४ कि.ग्रा. नमक, २०० कम्बल और ४६० सौर लालटेन का वितरण किया गया।

मुख्यमंत्री युवा भारत-दर्शन योजना प्रारंभ

स्वामी विवेकानन्द के १५०वें जन्म वर्ष के उपलक्ष्य में माननीय मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह जी ने छत्तीसगढ़ के युवकों को नि:शुल्क भारत-दर्शन की योजना का उपहार दिया है। मुख्यमंत्री डॉ. रमन सिंह जी ने ८ सितम्बर, २०१४ को जिला मुख्यालय राजनांदगाँव में आयोजित मुख्यमंत्री भारत-दर्शन योजना-शुभारंभ-समारोह को सम्बोधित करते हुए कहा कि राज्य सरकार की इस योजना से छत्तीसगढ़ के युवाओं को भारत की अनेकता मे एकता की महान संस्कृति के विविध रंगों को समीप से देखने, समझने और भारत के विराट स्वरूप से परिचित होने का सुअवसर मिलेगा।

इस योजना में प्रतिवर्ष १८ से ३५ वर्ष तक की आयु के २० हजार युवाओं को देश के प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्थलों और पर्यटन केन्द्रों का नि:शुल्क भ्रमण कराया जाएगा। योजना का संचालन स्कूल शिक्षा, आदिम जाति एवं अनुसूचित विकास विभाग सहित कुछ अन्य विभागों के सहयोग से खेल एवं युवा कल्याण विभाग द्वारा किया जाएगा। कन्याकुमारी स्थित स्वामी विवेकानन्द स्मारक शिला के दर्शन से युवा प्रेरित होगें साथ ही इलाहाबाद, सारनाथ, बनारस, ग्वालियर, आगरा, फतेहपुर सीकरी, दिल्ली, जयपुर, अमृतसर, जलियांवालाबाग, मुम्बई, औरंगाबाद, अजन्ता-एलोरा, चित्तौड़गढ़, उदयपुर, माउण्टआबू, बेंगलोर, मैसूर, श्रीरंगपटनम्, त्रिवेन्द्रम, रामेश्वरम, सम्बलपुर, भुवनेश्वर, कोर्णाक, पुरी, कोलकाता, दार्जिलिंग, गंगटोक का भ्रमण करेंगे। OOO
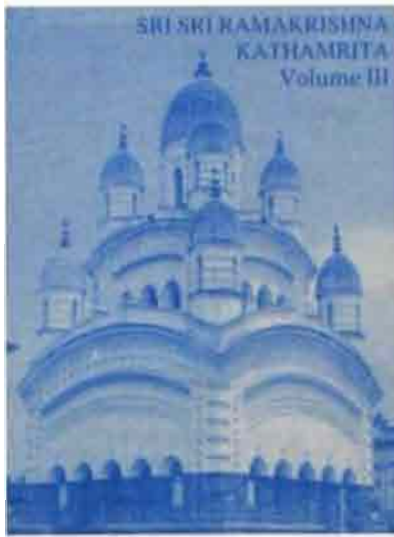
JUST RELEASED

VOLUME III
of
Sri Sri Ramakrishna Kathamrita

in English

A verbatim translation of the third volume of original Bengali edition. Available as hardbound copy at *Rs. 150.00 each* (plus postage Rs. 30.00). Available online at: *www.kathamrita.org*

HINDI SECTION

- **Sri Sri Ramakrishna Kathamrita** — Vol. I to V — Rs. 300 per set (plus postage Rs. 50)

  M. (Mahendra Nath Gupta), a son of the Lord and disciple, elaborated his diaries in five parts of 'Sri Sri Ramakrishna Kathamrita' in Bengali that were first published by Kathamrita Bhawan, Calcutta in the years 1902, 1905, 1908, 1910 and 1932 respectively. This series is a verbatim translation in Hindi of the same.

- **Sri Ma Darshan** — Vol. I to XVI — Rs. 825 per set (plus postage Rs. 115)

  In this series of sixteen volumes Swami Nityatmananda brings the reader in close touch with the life and teachings of the Ramakrishna family: Thakur, the Holy Mother, Swami Vivekananda, M., Swami Shivananda, Swami Abhedananda and others. The series brings forth elucidation of the Upanishads, the Gita, the Bible, the Holy Quran and other scriptures, by M., in accordance with Sri Ramakrishna's line of thought. **This work is a commentary on the Gospel of Sri Ramakrishna by Gospel's author himself.**

ENGLISH SECTION

- Sri Sri Ramakrishna Kathamrita — Vol. I to III — Rs. 450.00 for all three volumes (plus postage Rs. 60)
- M., the Apostle & the Evangelist — Vol. I to X — Rs. 900.00 per set (plus postage Rs. 100)
  (English version of Sri Ma Darshan)
- Sri Sri RK Kathamrita Centenary Memorial — Rs. 100.00 (plus postage Rs. 35)
- Life of M. and Sri Sri Ramakrishna Kathamrita — Rs. 150.00 (plus postage Rs. 35)
- A Short Life of M. — Rs. 50.00 (plus postage Rs. 20)

BENGALI SECTION

- **Sri Ma Darshan** — Vol. I to XVI — Rs. 650 per set (plus postage Rs. 115)

All enquiries and payments should be made to:
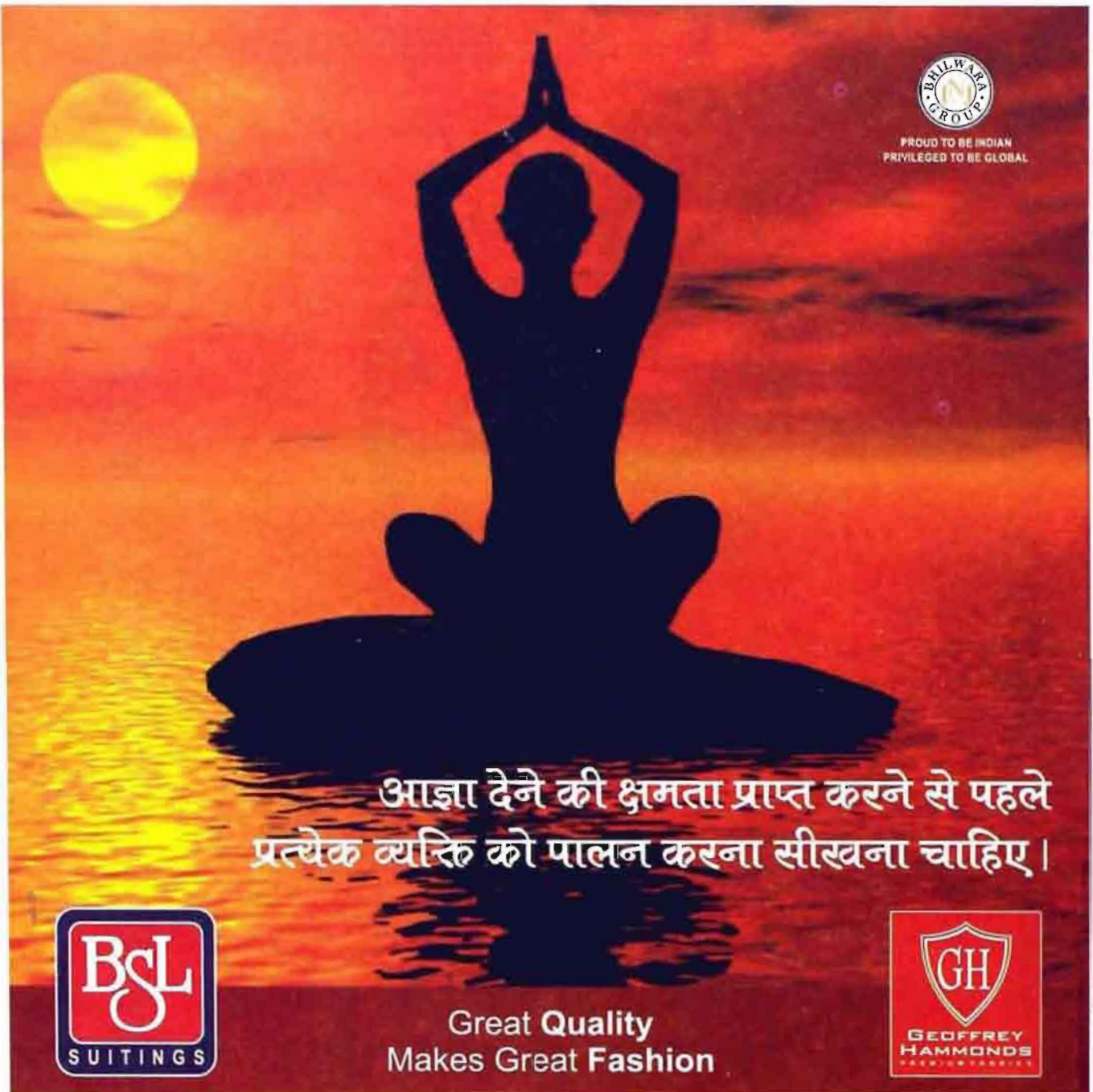
SRI MA TRUST
579, Sector 18-B, Chandigarh – 160 018 India
Phone: 91-172-272 44 60
email: SriMaTrust@yahoo.com

Registered with the Registrar of Newspapers of India under No. R.N. 7764/63

Postal Regn NO C.G./RYP D.N./01 /2012-14

मुद्रक : युगबोध डिजिटल प्रिंटस, रायपुर फोन -4200925

रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ के संचालक-मण्डल के लिए स्वामी सत्यरूपानन्द द्वारा संयोग ऑफसेट प्रा. लि., रायपुर में मुद्रित तथा रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर से प्रकाशित

प्रबन्ध सम्पादक - स्वामी सत्यरूपानन्द | सम्पादक - स्वामी प्रपत्त्यानन्द

प्रति अंक रु. ८/- | **वार्षिक रु. ६०/-**